कला और कलाकार

लेखक :

श्री सुरेन्द्र सिंह

- Kala Aur Kalakar
  कला और कलाकार

  प्रकाशक :
  सुवर्णा सुरेन्द्र सिंह
  12 तुलसी भवन,
  23 भुलाभाई देसाई रोड,
  बम्बई–400 026.

- Native Place :
  P.–O. Singari (Silchar)
  Vill, Singari
  Dist. Cachar, ASSAM

- Price : 15/–
  कीमत : 15 रुपये.

- मुद्रक :
  निजकृति प्रिन्टर्स
  फेन्सी मार्केट, रेड क्रोस स्ट्रीट,
  आग्रीपाडा, बम्बई–400 011.

कला और कलाकार

लेखक :

श्री सुरेन्द्र सिंह

With Best
Compliments
FROM
SK Sinha
23/3/86

- Kala Aur Kalakar
  कला और कलाकार

  प्रकाशक :
  सुवर्णा सुरेन्द्र सिंह
  12 तुलसी भवन,
  23 भुलाभाई देसाई रोड,
  बम्बई–400 026.

- Native Place :
  P.–O. Singari (Silchar)
  Vill, Singari
  Dist. Cachar, ASSAM

- Price : 15/-
  कीमत : 15/– रुपये.

- मुद्रक :
  निजकृति प्रिन्टर्स
  फेन्सी मार्केट, रेड क्रोस स्ट्रीट,
  आग्रीपाडा, बम्बई–400 011.

कला और कलाकार



लेखक

श्री सुरेन्द्र सिंह

'कला और कलाकार'

निवेदन के रूपमें दो शब्द-

प्रिय पाठकों की जानकारी के लिए मैं यहाँ पर मणिपुरी नृत्य-शैली एवं नृत्य प्रचारक गुरु सज्जनों का उल्लेख करने और परिचय देने की आंतरिक अभिलाषा रखता हूँ। जिस प्रकार गुजराती गुजरात प्रांतमें से महाराष्ट्र प्रान्त में, बम्बई, पूना आदि मशहूर शहरों में बसने लगे, ठीक उसी प्रकार कई लोग वर्षों पूर्व मणिपुरी लोग मणिपुर से असम में काछार, त्रिपुरा, सिलहट आदि जिलों में आकर निवास करने लगे। मणिपुर से असम में आकर बसे हुए लोगों की संख्या लगभग दो लाख मानी जाती है।

असम आने के बाद भी मणिपुरी लोगों ने अपनी संस्कृति

यथावत कायम और सुरक्षित रखी, और आज इस आधुनिक युग में भी मणिपुरी लोगों की अपनी संस्कृति चारों ओर प्रचलित दिखाई देती है। इस समय के बीच मणिपुरी नृत्य के कई गुरुजन नृत्य की शिक्षा देने और प्रचार करने के लिए असम में आते-जाते रहते थे। इन में से एक थे श्री पद्मलोचन सिंह (पद्म ओझा). दूसरे श्री कृष्णधन सिंह (बेका ओझा) इत्यादि।

मणिपुरकी नृत्य-शैली एवं काछार जिलेकी मणिपुरी नृत्य-शैली में थोडासा अन्तर दृष्टिगोचर होता है, जिस प्रकार कत्थक नृत्य-शैली में लखनऊ घराने और जयपुर घराने में फर्क नजर आता है। इस अन्तर के अनेक कारण हैं, परन्तु मैं इन कारणों का लम्बा इतिहास प्रस्तुत करना नहीं चाहता।

मणिपुरकी नृत्य-शैली को मणिपुर से बाहर, इतर समाज के सामने प्रस्तुत करनेवाले सर्व प्रथम व्यक्ति थे महाकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टाकुर। उनके बाद भारत और विदेशों में इसका प्रचार करने का श्रेय जाता है विश्व-विख्यात महान नृत्यकार श्री उदय शंकर और श्रीमती मेनका को जिन्होंने अपने अद्भुत प्रयोगों से संसार को मुग्ध कर दिया। तदुपरान्त शान्ति निकेतन में श्री नवकुमार सिंह, श्री सेनारिक राजकुमार, श्री मोही सिंह, श्री बिहारी सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

बम्बई में श्री नवकुमार सिंह, श्री विपिन सिंह, मैं - सुरेन्द्र सिंह, श्री देवेन्द्र आदि गुरुजन प्रसिद्ध हैं। उपरोक्त सभी गुरुजन असम के कछार जिले के ही हैं। अल्प समय के लिए श्री नरेन्द्रकुमार सिंह और श्री प्रियगोपाल सिंह भी बम्बई में आये थे। ऐसे गुरुजनों की कला और परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए, जो कलाकार वृन्द तैयार हुआ है, उसके अतिरिक्त

अपने व्यक्तिगत अनुभवों की कुछ बातें, मैं इस पुस्तिका के माध्यम से प्रगट करने की हार्दिक इच्छा रखता हूँ ।

मैं अपनी आंतरिक उत्कंठा को समाज के सामने रखने के लिए कोई कल्याणकारी माध्यम ढूंढ रहा था, कि तभी मेरे अन्तःकरण में 'कला और कलाकार' नामक पुस्तिका लिखने की प्रेरणा हुई । बंगाली भाषा के अतिरिक्त किसी दूसरी भाषा पर मेरा इतना अधिकार नहीं, कि मैं उसमें अपनी आंतरिक आकांक्षा व्यक्त कर सकूँ । बाद में मुझे बंगाली भाषा से गुजराती भाषा में अनुवाद कराने की इच्छा हुई और उस इच्छा की पूर्ति के लिए, जिन्होंने मुझे अपना अपरिमित सहयोग दिया है, उनमें श्री मुकुन्द जानी, श्रीमती दीपिका वाघवाला, जीतेन्द्र मालवियाके नाम उल्लेखनीय हैं। इस सहायता और सहयोग के लिए मैं उनका अत्यधिक आभारी हूँ। फिर बाद में गुजराती से हिन्दी भाषा में अनुवाद करने की इच्छा हुई। मैं क्या चाहता था, यह मैं नहीं कह सकता, लेकिन मेरे विचार और कल्पना में जो मूर्ति थी, उसके दर्शन करना चाहता था। गुजराती से हिन्दी भाषा में अनुवाद करने के लिए श्री शास्त्री बालकृष्ण मेहता का भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

यहाँ तक आते-आते मेरे विचारों ने साकार रूप अवश्य प्राप्त कर लिया, लेकिन उसी तरह, जिस तरह रेखाचित्र होता है । रेखाचित्र में रंग भरने से ही उसकी शोभा बढ़ती और निखरती है । इसके लिए आवश्यकता होती है किसी चित्रकार की, किसी कल्पनाशील कलाकार की, जो अपनी तूलिका से अनुपम, आकर्षक तथा स्वाभाविक रंग भरकर इस चित्र को सुन्दर और आकर्षक बना सके इसे अमरत्व प्रदान कर सके। और तब मुझे याद आये मेरे पुराने, परमप्रिय, कलाकार और कवि मित्र श्री गौतम मिश्र । उन्होंने अपनी,

कलम रूपी तूलिका से कल्पना और भाषा के ऐसे रंग भरे कि इस चित्र में उभार आ गया, इसे देखते ही बनता है ।

मेरी यह पुस्तिका भी अब एक सुन्दर और सजीव मूर्ति बन चुकी है । इसे देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिल रहा है । इसके लिए मैं श्री. गौतम मिश्र का बहुत-बहुत आभार मानता हूँ ।

सुरेंद्र सिंह (सिन्हा)



"कला और कलाकार"

ईश्वर एक अनुपम कलाकार है। नर और नारी उसकी सर्वोत्तम कला-कृतियाँ हैं। नर में बल और पराक्रम का ओज होता है, तो नारी में सुन्दरता और कोमलता का तेज। नर का शरीर पुष्ट और कठोर होता है. और नारी का तन सुन्दर और कोमल। नर अपने पौरुष और कठोरता को बनाये रखने के लिए अनेक प्रकार के खेल-कूद और व्यायाम किया करता है, और नारी अपनी सुन्दरता और कोमलता को सदा कायम रखने के लिए नृत्य का आश्रय लेती है। यही उसके स्वास्थ्य के लिए अनुपम व्यायाम है। इसी से उसके अंग-प्रत्यंग में लोच और लचक, सुन्दरता और कोमलता बढ़ती और स्थिर रहती है। नर, बल और पराक्रम का प्रदर्शन करता है, नारी सुन्दरता और कोमलता का आकर्षण रखती है। इस आकर्षण को बनाये रखने के लिए वह नृत्य का सेवन करती है। पुरुष भी नृत्य-कला

का आदर करते और उसे अपनाते आये हैं।

नर और नारी एक ही अद्‌भुत कलाकार की दो अनोखी कला-कृतियाँ, एक कठोर एक कोमल। एक बलवान एक सुन्दर; पर दोनों एक दूसरे के पूरक। इन दोनों ने स्वस्थ और मस्त रहने के लिए नृत्य का सहारा लिया।

संसार में नृत्य दो प्रकार के होते हैं। पहला लोकनृत्य दूसरा शास्त्रीय नृत्य। भारत में शास्त्रीय नृत्यों की चार (४) शैलियाँ हैं- (१) भरत नाट्यम्, (२) कथाकल्ली, (३) कथक और (४) मणिपुरी। मणिपुरी के दो अंग हैं (१) ताण्डव और (२) लास्य। ताण्डव में रौद्र, कठोरता, भयंकरता वीभत्सता, और पौरुष आदि प्रकट करने के गुण हैं। इसलिए यह नृत्य पुरुषों के लिए अधिक अनुकूल है। पुरुष ताण्डव नृत्य सीखते और अपनाते हैं। ताण्डव नृत्य के लिए प्रसिद्ध भगवान शंकर का नाम उल्लेखनीय है। ताण्डव नृत्य रुद्र के प्रिय नृत्य के रूप में विख्यात है।

लास्य में अधिक लालित्य है। इसमें सुन्दरता, कोमलता और माधुर्य तथा प्रेम और वात्सल्य के भाव प्रकट करने के गुण हैं, जिनका बहुत ही सरलता से प्रदर्शन और दर्शन किया जा सकता है। यह नृत्य स्त्रियों के अंग और स्वभाव के अनुकूल है। इसलिए यह नृत्य उन्हीं को शोभा देता है। लास्य नृत्य के लिए भगवान शंकर की अर्धांगी भगवती पार्वती प्रसिद्ध है। भारत के शास्त्रीय नृत्य में मणिपुरी नृत्य का विशेष और महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस नृत्य का प्रचार और प्रसार करने के लिए मैंने बम्बई को गत ३६ वर्षों से [अर्थात – १९४४] से अपने कार्यक्षेत्र का केंन्द्र बनाया। सद्‌भाग्य से मुझे यहाँ प्रशंसक मित्र मंडल, स्नेहल और समझदार शिष्यवर्ग, और अच्छे कला-

कार मिले। गत कई वर्षों से उनका साग्रह और सप्रेम अनुरोध रहा कि मैं नृत्य कला की समालोचना, उसके उपयोग तथा लाभ-हानि आदि का विश्लेषण करनेवाली एक पुस्तक लिखूँ, जो जन साधारण की सामान्य मार्ग दर्शिका बन सके। उनके इस स्नेहपूर्ण साग्रह अनुरोध की मैं अवहेलना न कर सका। उनके प्रेमपूर्ण आग्रह और उत्साहवर्धक अनुरोध से प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर मैं अपने अनुभवों से भरी इस पुस्तक को आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। मित्रों और शिष्यों ने मुझे प्रेरणा दी है, और यह पुस्तक सबको, ज्ञान और अनुभव के क्षेत्र में, प्रेरणा प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन दे, यही मेरी आशा, अभिलाषा, मंगल कामना और शुभेच्छा है।

आधुनिक कलाकार

हमारे देश में कलाकारों का जीवन सदा आदर्श रहा है। लोक उनसे प्रेरणा लेकर अपना जीवन गढते थे। अपने आपको उन्हीं के आदर्श जीवन में ढालकर, एक कुशल स्वर्णकार या मूर्तिकार की तरह अपने चरित्रको स्वच्छ, सुन्दर और सुडौल आकार-प्रकार देते थे। इस प्रकार आदर्श जीवन का अनुकरण करके अपने जीवन में एक सुन्दर और स्वच्छ प्रभावशाली व्यक्तित्व का विकास करते थे।

साधारण जनता विशेष व्यक्तियों का अनुकरण करती है। वह नेता - अभिनेता कवि - कलाकार आदि के जीवन, रहन - सहन, खान पान और वेश - भूषा की नकल करती है। इसलिए इन व्यक्तियों को जनता के चरित्र निर्माण के लिए हमेशा सावधान रहना चाहिए। इन्हें ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जिससे जनता के चरित्र पर बुरा प्रभाव पडे।

आधुनिक कलाकार केवल कलाकार ही रहे, और उसके जीवन

सुशिक्षा और चरित्र में सदाचार का अभाव हो, यह तो आजके परिवर्तनशील और प्रगतिशील युग के अनुरूप नहीं माना जा सकता। सदाचार और सुसंस्कार ही तो कलाकार की सच्ची सम्पत्त है। इस अनोखी सम्पत्ति के सहारे और नृत्य-कला के मार्ग से अपने जीवन को अपनी मंजिल की ओर ले जानेका प्रत्येक कलाकार का दृढ संकल्प और परम लक्ष्य होना चाहिए।

आज के प्रगतिशील युग में एक दूसरे को प्रतिस्पर्धी समझकर शत्रुभाव रखना ईर्ष्या से उसकी निन्दा करना, उसके गुणों की अवहेलना करके उसके छोटे छोटे छिद्रों की ओर इशारा करना और उसकी सदा आलोचना करना अच्छे और महत्त्वाकांक्षी कलाकार को ये बातें शोभा नही देतीं। इससे तो उसका व्यक्तित्व और भी प्रभावहीन और निन्दनीय बन जाता है।

अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से दूसरे व्यक्ति के मनमें अखंड श्रद्धा और शाश्वत विश्वास जगाना प्रत्येक मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा होती है। कलाकार को अपनी तपस्या और स्वाभाविक गुणों से सबको मुग्ध कर देना चाहिए। अपने मुख से अपनी प्रशंसा अहंकार को उत्तेजित करती है। और अहंकार उसे प्रगति और लोकप्रियता के बदले अधोगति और अप्रियता की ओर ले जाता है। इसलिए कलाकार को अपने मुँह मियाँ मिठ्ठू नहीं बनना चाहिए। गुण होंगे, तो लोग तारीफ करेंगे ही।

क्षण प्रति क्षण क्षय होने वाले समयका मूल्यांकन करना मानव-जीवन में अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कलाकार तो विशेष व्यक्ति होता है। उसे तो पल-पल का सदुपयोग करके सामान्य जन के सामने आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। इसलिए प्रत्येक कलाकार को अपने काम पर निर्धारित समय पर उपस्थित होकर,

अपनी प्रवृत्तियों को अधिक वेगवती और प्रगतिशील बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। यही समय की माँग है।

लोक - नृत्य

नृत्य दो प्रकार के होते हैं – (१) लोकनृत्य और (२) शास्त्रीय नृत्य। लोगों द्वारा सामूहिक रूप से अपने हृदय के आनन्द को प्रकट करने के लिए किया जाता है। लोग झूम-झूमकर, उछल-कूदकर अपने आनन्द को नाच-गाकर प्रगट करते हैं, इसी को लोकनृत्य कहते हैं। यह सामूहिक नृत्य होता है, इसलिए पूरे समूह के लिए एक ही प्रकार की खास वेश-भूषा होती है! और कोई एक विशेष ताल होता है, ताकि पूरा समूह एक ही साथ, एक ही प्रकार की उछल-कूद और हलन-चलन कर सके, जो देखने में बड़ा ही मनोरम और भव्य दिखाई देता है। यही परम्परागत प्रचलित नृत्य होता है, जो बार-बार भाग लेने से अपने आप अभ्यास से आ जाता है। किसी प्रदेश के लोग बचपन से ही लोकनृत्य स्वाभाविक रूप से जानते हैं।

लेकिन परम्परा से प्रचलित लोकनृत्य सीखने की आवश्यकता नहीं है, ऐसा मान लेना ठीक नहीं है, अनुचित है। क्योंकि प्रत्येक प्रान्त या प्रदेश की अपनी खास परम्परा, विशेष शैली और अलग पद्धति होती है। इनका सूक्ष्म अवलोकन और पूर्ण अभ्यास करना अत्यन्त आवश्यक है। कुछ कलाकार देश के प्रमुख नगरों में प्रचलित 'लोकनृत्य महोत्सव' देखने जाते हैं। इन महोत्सवों में प्रदर्शित लोकनृत्यों को देखकर वे अपने मन में यह धारणा बना लेते हैं- 'कि वे स्वयं इन नृत्यों में प्रवीण हैं। इन में तो उछल-कूद और झूम-झाम के अलावा कुछ नहीं है। ऐसे

लोकनृत्योंकी तो वे खुद रचना कर सकते हैं। और वे मनमाने ढंग से लोकनृत्योंकी लोक प्रिय रचना करने लगते हैं। इन में तीव्र ताल और गति होती है, लेकिन लोकनृत्य का मूल तत्व नहीं होता। यह एक सुन्दर सजी हुई गुड़िया या कठपुतली के समान होता है, जिसमें गति और अदा तो होती है, लेकिन जान नहीं होती; जो हमारा तात्कालिक मनोरंजन तो कर देती है, परन्तु हमारे दिल और दिमाग को स्पर्श करके हमें मुग्ध और प्रभावित नहीं करती।

आजकल शहरों में जो भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके लोकनृत्य पेश किये जाते हैं, उनमें लोकनृत्यों के मूल तत्वों का प्रायः अभाव होता है। इनमें आँखों को अच्छी लगनेवाली रंग-बिरंगी विचित्र वेशभूषा, मनको उत्तेजित करने वाला संगीत तीव्र ताल और प्रखर वाद्य होते हैं, जो अपनी तीव्र गति से जनता के मन को अपनी ओर खींच ले जाते हैं; पर कुछ दे नहीं जाते। ये कलाकार तालियों की गड़गड़ाहट को ही अपनी सफलता समझते हैं: कलाकारों को चाहिए कि वे जिस प्रांत का लोकनृत्य हो, उस प्रान्त में जाकर उसके स्वाभाविक स्वरूप का अध्ययन करें, उसे अच्छी तरह आत्मसात करके फिर उसकी योजना, रचना और प्रदर्शन करें, तो यह अधिक अच्छा होगा। प्रेक्षकों को भी चाहिये कि वे मूल तत्वों को महत्व दें, बाहरी आडम्बर को प्रोत्साहन न दें।

शास्त्रीय नृत्य

पहले लोक नृत्यों का जन्म हुआ, फिर शास्त्रीयनृत्यों आविर्भाव का लोकनृत्यों में आनन्द और मस्ती को प्रगट करने के लिए सिर्फ अंग अभिनय और गति की प्रधानता होती है। लेकिन शास्त्रीयनृत्यों में अंग-प्रत्यंग, भाव-भंगिमा, मुद्रा-अभिनय आदि सब का प्रयोग होता है। इन का प्रयोग हृदय के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए होता है। ये भाव-भंगिमायें और मुद्रायें,

नृत्य के कुशल विद्वानों, आचार्यों और शास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए निश्चित और निर्धारित किये हैं। इसलिए इसे शास्त्रीय नृत्य कहते हैं। शास्त्रों के नियमों के अनुसार ही ये नृत्य रचे जाते हैं। इनमें निश्चित नियम और बन्धन होते हैं। पुराणों के प्राचीन काल से वर्तमान अर्वाचीन काल तक ऋषि-मुनियों, साधु-संन्यासियों, विद्वान-पंडितों, स्नातक-शास्त्रियों ने इसे सजाया सँवारा है, सुधारा और निखारा है। आज शास्त्रीय नृत्य उन्नति और विकास के चरम शिखर पर है। शास्त्रीय संगीत और नृत्य हमारी विरासत है। यह हमें अपने पुर्वजों से प्राप्त 'वरदान' के समान है। यह ऐसा सुन्दर पुरस्कार है, जो परिश्रम से ही प्राप्त होता है।

इसलिए इसका अपूर्ण ज्ञान लेकर इसके प्रचार में लग जाना बहुत ही अहितकर और हानिकारक होगा। इसलिए नृत्य के विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों का यह परम पवित्र कर्तव्य है कि वे शास्त्रीय नृत्य को सम्पूर्ण रूप में सीखकर ही अपने जीवन के विकास और प्रगति में लगें, नहीं तो उनकी अधोगति निश्चित है। शास्त्रीय नृत्य तो विकास और उन्नतिकी चरम चोटी पर विराजमान है। कलाकार को यदि अपना विकास करना है, प्रगति की ओर आगे बढना है, उन्नति की ऊँची चोटी पर चढना है, तो उसे शास्त्रीय नृत्य का अथक और गंभीर अभ्यास करना चाहिए।

नृत्याचार्य गुरु को भी चाहिए कि वे धन की लालसा से मुक्त होकर अपने शिष्यों को शास्त्रीय नृत्य के सभी अंग-प्रत्यंगों की संपूर्ण शिक्षा प्रदान करें ताकि यह परम्परा आगे बढती रहे और हमारी विरासत की यह सम्पति भविष्य में दूसरों को मिलती

रहे। इस प्रकार यह शास्त्रीय नृत्य सदा जीवित और अजर-अमर रहे।

नृत्य - नाटिका

नृत्य-नाटिका, गीत, संगीत, और नृत्य की त्रिवेणी का संगम होती है। इसलिए लेखक को सदा ध्यान रखना चाहिए कि नृत्य-नाटिका का कथानक गीत के सहारे सरलता से नदी के प्रवाह की तरह चलता रहे। इसकी छन्द-रचनाओं में भी विविधता होनी चाहिए। जिस प्रकार नदी अपने उद्गम स्थान से निकल कर पहाड़ी चट्टानों पर कलकल करती हुई बहती है, ऊँचे-नीचे और ऊबड़-खाबड़ पथरीले स्थानों को लाँघती और पार करती हुई लहराती हैं, फिर अचानक ऊँचे झरने से झरती हुई नीचे गिरती है। यह अनुपम शोभा अत्यन्त मनोरम और दर्शनीय होती है। फिर पहाड़ी स्थान से उतर कर, शान्त और गम्भीर गृहिणी की तरह मैदान और समतल भूमि को अपना निवास-स्थान और कार्यक्षेत्र बनाती है। वह आसपास के मैदानों को अपने मधुर जलसे सींच कर हरा-भरा बना देती है। अपना पुण्य कार्य करके फिर विशाल सागर में अपना समापन करती है। उसी प्रकार कथानक के गीतों को चलना चाहिए। नदी, पहाड़ों में चंचल बालिका की तरह उछ-लती-कूदती है, फिर आगे मस्त और मग्न मुग्धा युवती की तरह मचलती और थिरकती मैदानों में अनुभवी प्रौढ महिला (गृहिणी) की तरह शान्त और अपने परम लक्ष्य सागर में विलीन हो जाती है। मुख्य कथानक के गीतों के विविध रूप इसी प्रकार होने चाहिए गीत के सहारे संगीत बनता है और संगीत के आधार पर नृत्य। इसलिए गीत जितना सुन्दर होगा. संगीत उतना ही सरस और मधुर और तब नृत्य अपने उत्तम रूप की शोभा दिखायेगा और सबका

मन लुभायेगा। नृत्य-नाटिका, सचमुच मूल रूप में गीत-नाटिका होती है। यह ताल, स्वर, और लय में बँधी होती है। यदि नृत्य-नाटिका, ताल, स्वर, और लय के बन्धन से मुक्त होकर स्वच्छन्द विहार करने लगे, तो वह साधारण नाटक का रूप धारण कर लेगी, जो नृत्य-नाटिका के नाम को कलंकित कर देगी।

नृत्य-प्रदर्शन

आजकल सामुद्रिक जहाजों, होटलों और क्लबों में नृत्य प्रदर्शन होने लगा है। इन स्थानों का वातावरण नृत्य प्रदर्शन के अनुकूल नहीं है, क्योंकि यहाँ पर लोग विशेष रूप से नृत्य देखने नहीं, बल्कि खाने-पीने और गपशप लड़ाने आते हैं। खान-पान और बात-चीत में लगे रहने से उनका ध्यान नृत्य की ओर नहीं रहता। इसलिए नृत्यकार की कला और मेहनत यहाँ बेकार जाती हैं। ऐसी स्थिति में कोई व्यक्ति ताली बजाता है, तो दूसरे लोग भी शिष्टाचार-वश अन्धाधुन्ध अनुकरण करते हुए ताली बजाने लगते हैं। यह कलाकार का सम्मान नहीं, बल्कि अपमान है। इसलिए इस प्रकार की प्रचलित आधुनिक प्रथा को समाप्त करने के लिए इसका बहिष्कार करना चाहिए। कलाकारों को नृत्य के ऐसे आयोजनों में न भाग लेना चाहिए और न सहयोग देना चाहिए।

कुछ व्यापारी या राजनीतिज्ञ किसी विशेष दृष्टिकोण से अपने किसी खास स्वार्थ की सिद्धि के लिए कलाकारों को फुसलाकर ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं। शुरू में उनकी खुशामद करके खुश करने के लिए उनकी और उनकी कला की बड़ी तारीफ करते हैं। काम हो जाने पर, पैसा देते समय या उनकी अनुपस्थिति में उनकी

बड़ाई के बदले बुराई करते हैं; उनकी कला की आलोचना और उनके स्वभाव की निन्दा करते हैं। धनोपार्जन के लिए इस तरह से अपमान सहना कलाकार को शोभा नहीं देता। अपने स्वाभिमान को बेच कर धन कमाना, कलाकार के लिए आत्महत्या के समान अवान्छनीय है। अपनी कला से, उत्सुक और समझदार प्रेक्षकों का मनोरंजन करना उन्हें सद्भावना, एकता और भाई–चारे की प्रेरणा देना, यही कलाकार का परम कर्त्तव्य होना चाहिए।

समालोचना –

पत्र–पत्रिकाओं के महलको दृढ़ और स्थिर रखने के लिए अनेक सुन्दर और सुदृढ़ स्तम्भ होते हैं। विविध विषयों की लौह-शलाकाएँ रखकर इनमें हास्य–व्यंग्य आदि सिमेंट कौंक्रीट का गारा भरा जाता है। इन्हें सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए सुन्दर और कोमल शब्दों से, बेल–बूटों की नक्काशी की जाती है। ऐसी लचीली भाषा का प्रयोग किया जाता है, जो टेढ़ी–मेढ़ी सड़कों की तरह, कहाँ जाती है, पता ही नहीं चलता। शायद रहस्य-कथाकी तरह किसी बड़े मार्ग से जा मिलती है, जहाँ से नया अध्याय जुड़ जता है।

इन स्तम्भों में से एक स्तम्भ है समालोचना। समालोचना–कला की कलाकार की चित्र की, चित्रकारकी; नृत्य की, नृत्यकार की, फिल्म की फिल्मकारकी। ग्रंथ की ग्रंथकार की; संगीत की, संगीतकार की। इस स्तम्भ का लेखक इतने विषयों का कुशल जानकार होता है, यह असम्भव बात है। फिर भी असंभव को वह सम्भव कर दिखाता है, अपनी प्रखर लेखनी से।

समालोचन का अर्थ है, गुण और दोष बताना। अच्छाई की प्रशंसा करना, बुराई, कमी या खामी की ओर संकेत करते हुए उसे

दूर करने का सुझाव देना, किसी नृत्य - प्रदर्शन की समालोचना करने में पहले लेखक को कार्यक्रम देखना और कलाकार या दिग्दर्शक को मिलकर वस्तु और उसका दृष्टिकोण समझना चाहिए। समालोचक को विषय का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, नहीं तो उसकी समालोचना अपना स्तम्भ भरने का एक साधन मात्र ही रह जायेगी।

कुछ समालोचक पुस्तक या चल - चित्र देखे बिना ही उसकी समालोचना कर देते हैं। यह जरा विचित्र बात है, पर कैसे हो जाती है. यह वे जानें, या राम जाने!

कुछ समालोचक कलाकार या दिग्दर्शक से मिलते हैं और यह कहकर चले जाते हैं कि आप अपने कार्यक्रम की एक पुस्तिका और एक नोट हमें दफ्तर पर भेज दीजिए, उसका अध्ययन करके हम समालोचना छाप देंगे। कार्यक्रम की पुस्तिका के साथ नोट और दूसरे नोट भी रहते हैं, जिनपर १०, २०, ५० या १०० छपे रहते हैं, और उनका अध्ययन करने के बाद कार्यक्रम की उत्तम आलोचना छप जाती है।

मणिपुरी नृत्य

मणिपुरी नृत्य के दो अंग हैं - [१] ताण्डव और [२] लास्य। इन दोनो अंगों की गहन गम्भीर, विस्तृत और पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के लिए कम से कम [८] आठ वर्ष चाहिए। और फिर 'गुरु-स्थान' पाने के लिए तो कई वर्ष लग जाते हैं। फिर भी विद्यार्थियों की सुविधा और सरलता के लिए संक्षिप्त रूप में [५] पाँच वर्ष का पाठ्यक्रम तैयार करने में आया है।

मणिपुरी नृत्य को सरल और सुगम समझकर लोग इस नृत्य को सीखने के लिए बड़े आतुर और उत्सुक हो जाते हैं; किन्तु जब व्यावहारिक रूप में सीखना आरम्भ करते हैं, तब उन्हें समझमें आता है कि इस नृत्य के 'लास्य' अंग की कोमलता, मृदुलता, भावभंगिमा, अंगिकाभिनय तथा मुद्राओं को आत्मसात करना महा कठिन कार्य है।

और जब 'ताण्डव' सीखने लगते हैं, तब केवल उठने बैठने, उछलने-कूदने के व्यायाम कार्य से ही उन्हें इतना पसीना आने लगता है कि वे पसीने से घबराकर भीगी बिल्ली बन जाते हैं। और तब अपने लक्ष्य की ऊँचाई तक उछलने के बदले, दुम दबाकर खिसक जाते हैं।

कुछ लोग बड़े-बड़े नृत्य-गुरुओं का नाम लेकर, उनका शिष्य होने का दावा करते हैं। उन्हीं गुरुओ के नामों का सहारा लेकर, मणिपुरी नृत्य की शिक्षा देते हैं, नृत्य वर्ग चलाते हैं, पैसा कमाते हैं और अपना पेट भरते हैं। मेहनत करके पैसा कमाना और अपना पेट भरना कोई बुरी बात नहीं है, लेकिन गलत प्रचार का लाभ उठाना, धोखा और छल-कपट है। इससे शुद्ध मणिपुरी नृत्य में विकृति आ सकती है। इससे सम्पूर्ण मणिपुरी नृत्य-शैली को हानि पहुँच सकती है। मणिपुरी नृत्य शैली की बारीकी से बुनी गई कलात्मक चादर में दाग लगा सकती है। उसकी कसीदाकारी बिगड़ सकती है और उसकी बुनाई में खराबी आ सकती है।

मणिपुरी नृत्य की शिक्षा देने वाले गुरुओं को आचौबा भंगी पारेंग, लास्य वृन्दावन पारेंग, गोष्ठ भंगी पारेंग, गोष्ठ वृन्दावन पारेंग, खुरुम्बा भंगी पारेंग, ताण्डव मेनकूप, ताण्डव तानचेप, ताण्डव चाली



भारत सरकार द्वारा युनाइटेड किंग्डम भेजे गये सांस्कृतिक मंडल के सदस्य श्री सुरेन्द्र सिंह को एयर पोर्ट पर विदाई देते हुए श्री रजनी लाखिया और श्री माल मलजी ।

लास्य मेनकूप, लास्य तानचेप, लास्य चाली, राधा नर्तन, कृष्ण नर्तन, राधा अभिसार, कृष्ण अभिसार, करताली, मंजीरा, खंडिता कन्दुक खेल, माखन चोर, लाइ हरौबा, माइबी आदि नृत्योंका, और कम से कम बीस से पचीस प्रकार के तालों का ज्ञान तो होना ही चाहिए। साथ ही नृत्य शास्त्र का ज्ञान होना तो अनिवार्य है ही। मणिपुरी नृत्य सीखनेवाले लोगों को योग्य मार्गदर्शन प्राप्त हो, इसी दृष्टि से उपरोक्त बातों का खास तौर पर उल्लेख किया गया है।

शास्त्रीय नृत्य का प्रमाण-पत्र

प्राचीन काल में शास्त्रीय नृत्य की शिक्षा के लिए न कोई विद्यापीठ था और न प्रमाण-पत्र देने की प्रथा। कलाकार की कुशलता ही सच्चा प्रमाण-पत्र थी। स्वतंत्रता मिलने के बाद ही भारत में सरकारी विद्यापीठ की स्थापना की गई और प्रमाण-पत्र की प्रथा अस्तित्व में आई।

विद्यापीठ की स्थापना से पहले, पचीस-पचास वर्षों की तन-तोड मेहनत के बाद, जिन परिश्रमी गुरुओं को शास्त्रीय नृत्य का ज्ञान प्राप्त हुआ, उनके पास उस ज्ञान का प्रमाण-पत्र न होना स्वाभाविक है। कलाका समुचित ज्ञान और शिक्षा की सुन्दर और सरल पद्धति ही, उनके ज्ञान-भंडार का प्रमाण-पत्र है।

आज के युग में विद्यार्थी उनसे शिक्षा ग्रहण करने और प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए आते हैं। ये गुरु उन्हें प्रमाण-पत्र देते हैं। इन्हें प्रमाण-पत्र देने का औपचारिक अधिकार है। कुछ कला गुरु और नृत्याचार्य व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि, और पैसे के लोभ के लिए

भी प्रमाण-पत्र दे देते हैं। लेकिन ऐसा करना उनकी प्रतिष्ठा और शान को शोभा नहीं देता। ऐसा करना कला का गला घोंटना है, नृत्यकला के साथ विश्वासघात करना है।

प्रमाण-पत्र मिल जाने के बाद, कुछ कलाकारों में, परम्परा से चली आती नृत्य शैली के नियमों और बन्धनों को तोड़ने और उनका उल्लंघन करने की मनोवृत्ति दिखाई देती है। वे स्वेच्छाचारी बन जाते हैं। उनके मन में ऐसी भावना आ जाती है कि हम जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। हमें प्रमाण-पत्र मिल जाने से इसका अधिकार प्राप्त हो चुका है। लेकिन किसी को भी अधिकारका दुरुपयोग करने का अधिकार नहीं है।

कथानक के प्रसंग और गीत संगीत के अनुसार नई मौलिक रचना करना कलाकार की कुशलता का द्योतक है, लेकिन शास्त्रीय नृत्यों को मनमाने ढंग से तोड़-मरोड कर पेश करना उसकी धृष्टता और अभिमान का परिचायक है। स्वेच्छाचारी ही धीरे-धीरे अनाचारी, दुराचारी और अत्याचारी बन जाते हैं।

ऐसे कलाकार जब कोई बेहूदा और अनुचित तथा अश्लील नृत्य बड़े ही आकर्षक ढंग से पेश करते हैं, तो सामान्य प्रेक्षक गण तालियों की गड़गड़ाहट से उनका स्वागत करते और प्रोत्साहन देते हैं। ऐसा करना अनुचित है। ऐसा प्रोत्साहन देने से उन्हें गलत बात करने की प्रेरणा और बल मिलता है। ऐसा करने से उनकी आँखों में अभिमान का नशा छा जाता है और उनकी बुद्धि पर अविवेक और अज्ञान का आवरण पड़ जाता है। थोडा यश और कीर्ति पा जाने के बाद ये अभिमानी कलाकार अपने गुरुओं

को भी भूल जाते हैं, जिनसे इन्होंने नृत्य कला की शिक्षा पायी थी। ये अपने गुरुओं का नाम लेने में अपनी हीनता समझते हैं। ये अपने आपको ही गुरुनाम गुरु मानते हैं। लेकिन मैं तो इन्हें गुरु घंटाल ही मानता हूँ।

'एडिनबरो अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक कला महोत्सव' में

शताब्दियों से अपने देश और अन्य देशों के बीच में संस्कृति और कला का विनिमय होता आया है। जिस समय अपना देश कला और संस्कृति के सिंहासन पर विराजमान था, उस समय अन्य देशों के प्रतिनिधि अपने-अपने देश की कला और संस्कृति की परम्परागत सम्पत्ति लेकर यहाँ पर आते, और हमारी संस्कृति, कला एवं ज्ञान की मशाल लेकर अपने देश में जाते, और वहाँ पर उसका प्रचार करते, तथा उसके प्रकाश को फैला कर अपने आपको देखते और दिखाते थे।

आज भी वही प्रणालिका प्रचलित है, और उसी प्रणालिका के अनुसार, हम पन्द्रह कलाकारों को भारत सरकारने 'एडिनबरो महोत्सव' में भाग लेने के लिए भेजा था। सन १९५६ की १७ जुलाई को हम लंडन पहुँचे। हमारे प्रवास के बाद, ठीक और सुयोग्य रूपसे, हमारा समय पूर्ण सफलता के साथ व्यतीत हो गया। हमारे अनुभव औरों को उपयोगी हो सकें, इसीलिए यहाँ पर उनका उल्लेख किया जाता है।

कलाकारों के दल के नेता का स्थान श्री रामगोपाल को दिया गया था। कम से कम समय में ढाई घंटों के लिए 'विविध नृत्य'

कार्यक्रम, एवं ढाई घंटों के लिए नृत्य-नाटिका – 'ताज महल' कैसे या किस प्रकार तैयार किया जाये, यही चिन्ता हम सभी कलाकारोंको सता रही थी। इस का कारण यह था कि पंद्रह दिनों में ही हमें लंडन पहुँचना था, लेकिन कई कलाकार तो लंडन में ही थे, इसलिए यहाँपर किसी भी प्रकार की तैयारी के लिए कोई भी सम्भावना नहीं थी।

इससे भी कठिन कार्य था, सभी कलाकारों को एकत्र करना और उनके लिए पासपोर्ट आदि की व्यवस्था करना। लंडन में भारतीय हाइकमिश्नर श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित का पत्र मिलते ही, इस जटिल समस्या का बड़ी ही सरलता से अन्त हो गया।

लंडन पहुँचते ही हमने 'विविध नृत्य' कार्यक्रम की तैयारी शुरू कर दी। दस से पंद्रह दिनों के कठिन परिश्रम और अभ्यास के कारण हमारा कार्यक्रम पूर्ण और सुचारु रूपसे तैयार हो गया। इस कार्यक्रम में मणिपुरी, भरतनाट्यम्, कथकली, कत्थक एवं लोकनृत्य का समावेश होता था। मणिपुरी के लिए मैं खुद, कथकली और भरतनाट्यम् के लिए श्री नम्बुद्री तथा कत्थक के लिए श्री रामलाल थे।

इस कार्यक्रम को प्रस्तुत करने के लिए हम सर्वप्रथम इटली गये। वहाँ पर 'अन्तर्राष्ट्रीय नृत्य-महोत्सव' में एक सप्ताह का कार्यक्रम 'नर्वी' के मनोहर उद्यानमें चलता रहा। इस कार्यक्रम के टिकट शुरू में ही बिक गये थे। वहाँ की जनताने बड़ी उत्सुकता और बड़ी दिलचस्पी के साथ हमारा कार्यक्रम देखा और उसकी खूब प्रशंसा की। इस प्रकार वहाँ के लोग भारतीयों को अपरिमित आदर की

दृष्टि से देखते हैं। जब कभी भी हम कहीं घूमने के लिए निकलते, तब वहाँ की प्रजा हमें घेर लेती, बड़े प्रेम और उत्सुकतासे बातचीत करती, और हमारा हस्ताक्षर लेने के लिए आग्रह करती थी।

भारतीय कला का प्रभाव

अपना और अपनी कला का वहाँ की जनता पर कितना और कैसा प्रभाव पड़ा यह इससे स्पष्ट मालूम होता है। हम भी वहाँ की जनता के सरल स्वभाव, कला-प्रेम, और वहाँ के अति-सुन्दर स्थानों से बहुत प्रभावित हुए। इन स्थानों में 'नर्वी' का वह उद्यान, जहाँ पर हमने अपनी कला के प्रयोग प्रस्तुत किये, विशेष उल्लेखनीय हैं। पर्वत-मालाओं से घिरा हुआ प्राकृतिक सुहावने दृश्यों से भरा हुआ, वन प्रदेश का वह भाग, हमारे 'नन्दनवन' के समान सुन्दर और आकर्षक दिखाई देता है। यहाँ के कला प्रेमी मानवों ने, नैसर्गिक साधनों की सहायता लेकर, इस उद्यान को आधुनिक सर्वश्रेष्ठ पद्धतिसे सजाने का पूर्ण और सफल प्रयास किया है। इस उद्यान के बीच में एक आकर्षक रंगमंच बनाया गया था। उसके पीछे लगभग चालीस 'रूप-सज्जाकक्ष' और सामने प्रेक्षकों के लिए बैठने की अति सुन्दर व्यवस्था भी की गई थी। सुन्दरियों की प्राकृतिक सुन्दरताको, सुन्दर आभूषणोंसे जिस प्रकार सजाया जाता है, उसी प्रकार सीटों की कतारों को, सुन्दर रंगों द्वारा, कलात्मक ढंग से सजाया गया था। प्रकृति की इस सुन्दरता को विशेष रूप से और आकर्षक बनाने के लिए, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे विद्युत-प्रकाश का आयोजन किया गया था। प्रकाश आयोजन की इतनी ही सुन्दर और आकर्षक व्यवस्था रंगमंच पर भी गई की थी। जनता के दोनों ओर लोहे के

ऊँचे-ऊँचे ढाँचों (मचानों) पर से पच्चीस-पच्चीस तीस-तीस बत्तियाँ नीचे रंगमंच पर रंग-बिरंगी प्रकाश फैला रही थीं।

इस प्रकाशमें कौन-सा कलाकार अपनी कला को छिपा सकता था! हम कलाकार मदोन्मत्त, मस्त मोर की तरह आनन्द से थिरकने लगे। आज भी वह दृश्य मेरी आँखों के सामने दिखाई देता है। हमारे प्रवास का प्रथम कार्यक्रम यहीं पर समाप्त हुआ, और हम फिर से दूसरी बार लंडन जाने के लिए निकले। रास्ते में पेरिसमें-रुकने और उस सुन्दर शहरको देखने का सुअवसर भी हमें प्राप्त हुआ।

लंडन पहुँचते ही हम 'एडिनबरो महोत्सव' के लिए नृत्य-नाटिका 'ताज महल' की तैयारी में लग गये। कठोर परिश्रम और साहस के आधार पर हमने एडिनबरो के एम्पायर थिएटर में अपने 'ताज' की कहानी नृत्य-नाटिका के रूप में प्रस्तुत की। हमारा यह कार्यक्रम वहाँ पर दो सप्ताह के लिए था। हमारे कार्यक्रम की बड़ी सुन्दर प्रशंसा हुई और टिकट तो पहले से ही बिक जाते थे। हमारे इस कार्यक्रम को श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने भी देखा और सराहा तथा हम सभी कलाकारों के सम्मान में एक सुन्दर भोज भी दिया।

– अभूतपूर्व अवसर –

इसके बाद हम अपने केन्द्र स्थान लंडन में फिर से पहुँच गए। वहाँ पहुँचते ही दूसरे दिन से ही रॉयल फेस्टिवल हॉल में दो सप्ताह के लिए हमारा कार्यक्रम रखने में आया। वहाँ भी पहले से ही 'हाउस फुल' हो चुका था, क्योंकि शायद हमारा कार्यक्रम अब तक काफी लोकप्रिय हो चुका था। रॉयल फेस्टिवल

हॉल लंडन में सबसे बड़ा और सुन्दर हॉल माना जाता है; और अत्यधिक विशाल होने के कारण कभी भी इतना सम्पूर्ण नहीं भरता । कार्यक्रम के अन्तमें इस थिएटर के मॅनेजर श्री ली ने हमारे सम्मान और सत्कार में एक चाय-पान का आयोजन किया । उस अवसर पर हमें अभिनन्दन देते हुए उन्होंने कहा कि - रॉयल फेस्टिवल हॉल के इतिहास में यह पहला ही अवसर है कि दो सप्ताह तक सतत चलनेवाले इस कार्यक्रम के लिए यह हॉल 'हाउस फुल' रहा । इसका यश पूर्ण रूप से भारतीय कलाकारों को ही मिल रहा है । यह सुनकर हमारे हृदय में आनन्द का पारावार लहराने लगा, और हम अत्यधिक आनन्द के पारावार में बहने लगे ।

इस कार्यक्रम के दो सप्ताह बाद, फिर से लंडन में पिकेडेली सर्कस के हिपोड्रम थिएटर में, तीन सप्ताह तक हमारा कार्यक्रम चलता रहा । किन्तु यहाँ पर पूर्ण संतोषजनक सफलता न मिलने के कारण पहले का आनन्द और जोश स्वाभाविक रूप से समाप्त हो गया । हमारे कार्यक्रम के समय ही, वहाँ पर रशियन और स्पॅनिश तथा अफ्रीकन बॅले भी चल रहे थे, जिसके कारण प्रेक्षकों का विभाजन हो गया था । शायद यही सफलता न मिलने का मुख्य कारण था, या कोई और दूसरा कारण भी हो सकता है ।

- विविध अनुभव -

इस कार्यक्रम के अन्त में मैंने श्री रामगोपाल के समक्ष स्वदेश जाने की अपनी इच्छा व्यक्त की, किन्तु उन्होंने मुझे थोड़े समय तक और रुक जाने के लिए कहा, और मुझे रोकने के

लिए अनेकानेक प्रयत्न किये, फिर भी मैं न रुक सका, मैं विवश था, मुझे स्वदेश लौटना ही उचित और कल्याणकारी लगा। अपने चार मास के प्रवास में मैंने जो कुछ देखा और अनुभव किया, उसमें कुछ अच्छा और कुछ बुरा भी है, कुछ मधुर और कुछ कडवा भी है। मैं वहाँ की जनता से अत्यधिक प्रभावित हुआ। उनके भद्र और सुन्दर व्यवहार, सभ्य विनम्र और शिष्ट आचार, समय की पाबन्दी, कठोर परिश्रम, एक दूसरे पर भरोसा और आत्म-विश्वास, एकता, स्वच्छता और अजोड़ आत्मीयता आदि उनके सद्गुण हमें अपने जीवन में आत्मसात करने योग्य हैं। इतना ही नहीं, वहाँ पर ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं है, अपना काम खुद ही करने और अपना बोझ खुद ही वहन करने में, वे हीनता का अनुभव नहीं करते हैं। वहाँ के लोग स्वावलम्बन के महत्व को अच्छी तरह समझते हैं। उनके ये कल्याणकारी गुण, सभी के लिए नितांत अनुकरणीय हैं; फिर भी हम उनके विशेष गुणों को सीखना ही नहीं चाहते। हम तो वहाँ के आकर्षक दुर्गुणों से ही, कृत्रिम आभूषणों, साधनों और प्रसाधनों की तरह, अपने शरीर और जीवन को सजाते आये हैं। हम दूसरों को गलतफहमी में डाल कर, और अपनी आत्मा को भी धोखा देकर, अक्सर यह कहते हैं कि यह तो पाश्चात्य सभ्यता है। सूट-बूट पहनना, और शराब पीना, यह कोई सभ्यता नहीं है। सभी के लिए कल्याणकारक, सुखद और संतोषजनक आचरणों और सदाचारों को ही सभ्यता कहते हैं।

वहाँ के लोगोंने हमें अनेक पार्टियों में आमन्त्रित किया। अनेकानेक सुन्दर खाद्य चीज़ों के साथ, आकर्षक प्यालों में, मेरे सामने शराब भी रखी गयी, परन्तु मैंने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर



युनाइटेड किंगडम के सांस्कृतिक प्रवास के दौरान 'ताजमहल' नृत्य नाटिका में शाहजहां के मुख्य पात्र के रूप में श्री सुरेन्द्र सिंह ।

शराब को अस्वीकार कर दिया, मेरे इस प्रकार के व्यवहार से वे नाराज़ नहीं हुए, बल्कि खुश होकर आदर और प्रशंसा की दृष्टि से मुझे देखते थे, और शराब के बदले मुझे लेमन देते थे। क्या यह सभ्यता नहीं है ?

— मैं शर्मिंदा बना —

एक बार कुतूहलवश मैं सूट पहनकर बाहर जाने के लिए निकला। उस समय जिस घरमें हमारा मुकाम था, उसकी गृहलक्ष्मी ने मुझे देखते ही हँसते हुए, कटाक्ष में कहा – अहा ! आज तो अपना राष्ट्रीय पोशाक छोड़कर आपने हमारा सुन्दर सूट पहन लिया है ! क्या यह आपको इतना सुन्दर लगा ? इसे पहनकर तो आपको अनुपम आनन्द मिला होगा ! इन मार्मिक व्यंग्यों का मेरे अन्तःकरण में इतना घाव लगा कि मैं बेचैन हो गया, तिल मिला उठा। मेरे दिल पर इतना असर पड़ा कि मैं शर्म से पीला पड़ गया।

वहाँ जाकर मैंने जो कुछ देखा और सुना, उससे मैं बहुत दुःखी हुआ। वहाँ पर हम अपने संस्कार और संस्कृति से वहाँ के लोगों को खुश करने के भगिरथ प्रयत्न में ही ओत-प्रोत रहते थे, यह मैंने देखा। हम कभी-कभी ऐसा मान लेते हैं कि हमारी संस्कृति और कला के बारे में ये विदेशीय लोग क्या जानते हैं ! सचमुच ये लोग तो कुछ भी नहीं जानते हैं; इसलिए हम जो कुछ भी दिखायेंगे या प्रदर्शित करेंगे, उसकी ये लोग प्रशंसा ही करेंगे !

जिन लोगों में कला और संस्कृति का थोडा-सा ही, सामान्य ज्ञान है, और शिक्षा की मात्रा कम है, वे तो ऐसा ही करेंगे। इसके सिवा उनके पास कोई दूसरा चारा भी तो नहीं है ! वे

और कर भी क्या सकते हैं ? सचमुच वे लाचार होते हैं । पर ऐसी स्थिति में, समझदार, सुज्ञ और सुशिक्षित लोग जब ऐसा करने लगते हैं, तब दिल को बड़ा आघात लगता है । इस संबंध में यदि कोई अच्छी सलाह भी देने का प्रयत्न करे, तो ये तथाकथित सुज्ञ और सुशिक्षित लोग, उसे मूर्ख समझकर, हँसने लगते हैं; और उसकी बात को मज़ाक में उड़ा देते हैं । इतना ही नहीं, किन्तु अपनी दुर्बलता कहीं प्रकाश में न आ जाये, इसलिए उस पर पर्दा डालने का प्रयास करते हैं, और उसको छल-कपट द्वारा दबा देने का प्रबल प्रयत्न करते हैं । और परिस्थिति के कारण हमें भी चुप रहना और इनकी बात मान लेना ही पड़ता है ।

– कठिन सफलता –

यदि सीधे-सादे मार्ग पर चलकर कोई व्यक्ति कुछ करना चाहे, तो उसे सफलता मिलना बड़ा कठिन हो जाता है । इसका मुख्य कारण यही है कि वह श्वान की तरह किसी की खुशामद करना नहीं चाहता है । बड़ी-बड़ी तथ्यहीन बातों का आडम्बर फैलाकर, बनावट और दिखावट का सहारा लेकर, अपना काम सिद्ध करना वह पसंद नहीं करता । इतना ही नहीं, पैसे के लोभ में पड़कर, कला को निकृष्ट बनाकर, उसका पतन करने की इच्छा नहीं रखता । इन सभी अच्छाइयों के कारण, उसके प्रति किसी भी सामान्य आदमी की कोई खास रुचि और विशेष सहानुभूति जाग्रत नहीं होती । अतः उसे कोई सामाजिक सहयोग और आर्थिक सहायता नहीं मिलती है, इसीलिए उसके पास कला का सम्पूर्ण ज्ञान होने पर भी वह अपने ध्येय को पूर्ण नहीं कर सकता, और उसकी मनोकामना मन में ही रह जाती है । यदि हजारों में

एक ऐसा श्रेष्ठ कलाकार सफलता प्राप्त कर भी लेता है, तो उसे भी अनेक प्रकार के असह्य और अवर्णनीय कष्टों और कठिनाइयों का सामना करने के बाद ही यह सफलता मिलती है ।

सामान्यतः जो लोग कूटनीति का सहारा लेकर चलते हैं, उन्हीं लोगों को अपने काम में सहज ही बड़ी सरलता से सफलता मिल जाती है । इतना ही नहीं, जो लोग अपनी चाल बदलकर, विविध दाँव पेंच लगाकर, दूसरों को अपने पाश में फँसाकर, अपना कार्य सिद्ध कर लेते हैं, ऐसे व्यक्तियों को ही हर एक प्रकार की सुख-सुविधा और सहायता प्राप्त होती है ।

– हम क्या हैं, और कहाँ है ? –

हमारे कार्यक्रम के प्रत्येक प्रसंग के अन्त में वहाँ के प्रेक्षक तालियाँ बजाकर हमें प्रोत्साहन देते थे । इसका अर्थ ऐसा कदापि नहीं होता कि हमारा कार्यक्रम उनको बहुत अच्छा लगा, या अधिक पसंद आया,; किन्तु वहाँ पर शिष्टाचार की दृष्टिसे, प्रोत्साहन देने के लिए, तालियाँ बजाने की एक सभ्य प्रथा है । सचमुच, कार्यक्रम अच्छा हो या खराब, पसंद हो या नापसंद, इसका कोई महत्व नहीं है ।

इतना होने पर भी, कई सच्ची और जरूरी बातें प्रस्तुत करना इसलिए आवश्यक है कि यदि भविष्य में, इस प्रकार का कार्य किसी के हाथ लग जाये, तो उसका काम शोभास्पद बने, ऐसा मार्ग-दर्शन देना परमावश्यक है । इसलिए कहने का मुख्य तात्पर्य इतना ही है कि 'वहाँ के लोग हमारी भारतीय संस्कृति और कला के बारे में कुछ भी नहीं जानते,' ऐसा मान लेना बडी भारी भूल

है । सम्भव है कि वे लोग जितना जानते हैं, उतना हम भी अपनी भारतीय संस्कृति और कला के सम्बन्ध में शायद नहीं जानते होंगे । वहाँ के प्रेक्षकों और पत्रकारों ने हमारे कार्यक्रम की ऐसी आलोचना-समालोचना की, कि उसे सुनकर और देखकर हम आश्चर्य-चकित हो गये । और हमें अनुभव हुआ कि वहाँ के लोगों की आलोचना, विवेचना और समालोचना कितनी यथार्थ और उचित थी ।

वहाँ हमने रशियन, अमेरिकन, अफ्रीकन, स्पेनिश और दूसरे अनेक देशों की नृत्य–नाटिकायें (बॅले) देखीं । उनमें से कई देशों के लोगों ने हमें अपने बॅले का कार्यक्रम देखने के लिए भी आमंत्रित किया था । उनकी नृत्य–नाटिका में लगभग (१५०) एक सौ पचास कलाकार थे । प्रत्येक कलाकार अपने–अपने कार्य में तल्लीन रहता था । कोई भी एक दूसरे के काम में रोक–टोक या विक्षेप नहीं करता था । उनके अभ्यास और शिक्षण की प्रणालिका बहुत अच्छी थी । इस तालीम में यदि कोई छोटी–मोटी भूल हो जाती, तो उसे बिना सुधारे, वे आगे नहीं बढते थे । भूल सुधारने के लिए, भले ही यदि सौ बार भी पुनरावर्तन करना पडे, तो वे खुशी से कर लेते थे, परंतु कोई भी किसी भी प्रकार की नाराज़गी प्रकट नहीं करता था, या कोई भी उसके विरोध में वाद-विवाद नहीं करता था । तालीम के लिए निश्चित समय पर वे सभी उपस्थित होकर अपने–अपने काम में लग जाते थे । उनके साथ अपनी तुलना करते समय यह प्रश्न हमारे सामने आकर खड़ा हो जाता है, और ललकार कर पूछने लगता है कि – हम क्या हैं, और कहाँ हैं ?

–* भारतीय संस्कृति *–

जहाँ तक मैं जानता हूँ, भारतीय संस्कृति और कला इतनी

विशाल, विस्तृत और व्यापक है कि उसकी कोई सीमा या थाह ही नहीं है। इतना होने पर भी हम कुछ नहीं कर सकते हैं। इसके भी कई कारण हैं, जिनमें गरीबी, आलस्य, शिक्षा का अभाव, स्वार्थ, पक्षपात, राग-द्वेष, मतभेद और परस्पर वैमनस्य आदि मुख्य हैं। हम अपनी व्यक्तिगत कीर्ति और स्वार्थ के लिए दूसरे को निम्न और हीन बनाकर, दबाकर रखना चाहते हैं। और यदि ऐसा न भी हो सका, तो दूसरे और तरीकोंसे उसे कठोर कष्ट देकर, असह्य पीड़ा पहुँचाकर, परेशान कर देते हैं।

समय की मर्यादा या बन्धन से तो हम हमेशा बचना और मुक्त रहना चाहते हैं, हम आजाद लोग हैं, बन्धन हमें पसन्द नहीं है। यदि भूल से कोई समय पर काम पर आ भी जाता है, तो दूसरे के साथ बेकार गपशप लगाने लगता है। हम निरर्थक बातों पर वाद-विवाद करते हैं, किसी महत्वपूर्ण बात पर विचार-विमर्श नहीं करते। एक का दूसरे के साथ वैमनस्य या शत्रुभाव पैदा करके, अपना स्वार्थ सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। कोई भी परिश्रम नहीं करना चाहता, परन्तु सभी दिग्दर्शक बनकर, इधर-उधर घूमना चाहते हैं। और जब मंच पर अभिनय के लिए जाते हैं, तब सभी अपने-अपने दिग्दर्शन और धुन के अनुसार चलते हैं, इतना ही नहीं, कोई भी ताल पर तो चलता ही नहीं।

* कला किसलिए *

केवल उछलने-कूदने या हाथ-पैर चलाने से ही कोई नृत्यकार और सिर्फ 'सा रे ग म' गाने से ही संगीतकार नहीं बन सकता। नृत्यकार, संगीतकार, अथवा कलाकार बनने के लिए कठोर साधना की परम आवश्यकता होती है।

इसलिए मैं कलाकारों से प्रार्थना करना और सलाह देना चाहता हूँ, कि सांस्कृतिक कला का कार्यक्रम पेश करने से पहले, उसका सही विषय प्रस्तुत करने के लिए योग्य बनें और प्रेक्षकों पर अपना और प्रस्तुत विषय का अच्छा प्रभाव डालें। इस बात का ध्यान उन्हें हरदम रखना चाहिए।

भारत सरकार से भी मेरी यही प्रार्थना हैं कि किसी भी देश या स्थान पर भारतीय संस्कृति और कला के प्रचार के लिए यदि कोई प्रतिनिधि मंडल भेजे, तो वह प्रतिनिधि मंडल अपने कार्य में कुशल और योग्य हो, इस बात का ध्यान रखे, जिससे देश का गौरव बढ़े!

"कला और कलाकारों की समालोचना"

मेरे मन में कई दिनों से इच्छा थी कि मैं 'कला और कलाकार' इस विषय पर कुछ लिखूँ। मुझे कम से कम (३६) छत्तीस वर्षों का थोडा-बहुत अनुभव प्राप्त हुआ हैं, उसका थोडा-सा सारांश मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सब से पहली बात यह है कि :—
खुद रंगमंच पर नृत्य करना और दूसरों को सिखाना, ये दोनों बातें अलग-अलग हैं। मैं हमेशा देखता आया हूँ कि श्रेष्ठतम नृत्य करनेवाला दूसरे को नृत्य सिखाने जाता है, तो वह सिखाने में असफल होता है। कारण यह है कि कई विद्यार्थी ऐसे होते हैं कि उनके साथ अधिक से अधिक परिश्रम करने पर भी वे अच्छी तरह से सीख नहीं सकते। इसलिए सीखनेवाले विद्यार्थियों के मन में कभी-कभी निराशा उत्पन्न होती है। इस प्रकार निराश

बने हुए विद्यार्थियों को ऐसी सुन्दर और आकर्षक पद्धति से सिखाना और समझाना चाहिए कि वे बड़ी सरलता के साथ सीख सकें। ये सारी बातें उनको सिखाने वाले गुरु की शिक्षा पर आधार रखती हैं।

सिखानेवाले गुरु का अंग-भाव और कोमलता ऐसी होनी चाहिए कि उसके विद्यार्थियों का नृत्य देखकर लोगों के मन में गुरु की शिक्षा और कला का परिचय हो।

कई गुरु ऐसे भी होते हैं कि जो विद्यार्थियों को अच्छी तरह सिखा नहीं सकते, तो विद्यार्थी भी हमें क्या दिखा सकेंगे! ऐसे विद्यार्थियों का नृत्य देखकर लोग बोलने लगते है कि "जैसे गुरु वैसे शिष्य"। कई विद्यार्थी तो ऐसे होते हैं कि गुरु कितना भी अच्छा क्यों न सिखाये, फिर भी वे सीख नहीं सकते। इसके भी कई कारण होते हैं।

कला में श्रद्धा रखकर नियमित पाँच-छ; घंटे परिश्रम करने के बाद भी श्रेष्ठ कलाकार बनना बड़ा कठिन होता है तो फिर सप्ताह में दो-तीन घंटे सीखकर श्रेष्ठ कलाकार कैसे बन सकते हैं! यह भी एक विचारणीय समस्या है।

इसके बाद भी प्रतिदिन एक घंटा नृत्य-शास्त्र एवं ताल का ज्ञान प्राप्त करना अत्यधिक आवश्यक है। परंतु जो विद्यार्थी परिश्रम ही नहीं करना चाहते हैं, ऐसे विद्यार्थी गुरु के द्वारा सिखलाई गई कला दिखा नहीं सकते, तब गुरुजी कहते हैं कि "इस प्रकार नहीं चलेगा। और परिश्रम करना ही होगा।" उस समय वे छात्र बहाना निकालते हैं कि "गुरुजी! मुझे समय नहीं मिलता,

क्योंकि मेरे घर पर अतिथि आए हुए थे; कल सिनेमा देखने गये थे; आज तो सिर में दर्द होता है; पैरों में दर्द होता है; आदि आदि–

ऐसे अनेक प्रकार के अनुचित बहाने बनाने से गुरु का उत्साह भी भंग हो जाता है।

इस प्रकार के छात्र, खुदको आता हो या न आता हो, इसकी परवाह नहीं करते हैं। और ऐसे छात्र हमेशा नया-नया सीखना चाहते है, किन्तु गुरु ऐसे छात्रों को आगे की शिक्षा नहीं देना चाहते। इसका मूल कारण यही है कि सिखलाई गई कला को छात्र जब तक अन्तःकरण से ग्रहण न कर लें, तब तक आगे की शिक्षा देने का कोई अर्थ नहीं होता। इसलिए गुरु ऐसे छात्रों से अपनी नज़र के सामने ही परिश्रम करवाते हैं। इसके कारण ऐसे छात्र गुरु के सामने टेढ़ा-मेढ़ा मुँह बनाकर अपनी उदासीनता दिखाते हैं।

ऐसी विषम परिस्थिति में गुरु ऐसे छात्रों को शिक्षा नहीं देते; तब विद्यार्थी कोई भी कारण दिखाकर सीखना छोड़ देते हैं। ऐसे अनेक प्रकार के कटु अनुभव होने के बाद गुरु के मन में कई तरह के विचार उत्पन्न होते हैं, जिसके कारण कला–गुरु धीरे–धीरे अपने सिद्धान्त छोड़कर विद्यार्थीयों की रुचि के अनुसार चलने लगते हैं। ऐसी प्रकृति-वाले छात्र जब लोगों के समक्ष नृत्य–प्रदर्शन करते हैं, तब जितनी श्रेष्ठ कला दिखानी चाहिए, वे उतनी नहीं दिखा सकते। तब लोगों के मन में अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता; इतना ही नहीं, लोग परस्पर चर्चा करने लगते हैं कि 'इसमें विद्यार्थीयोंका क्या दोष! जैसा गुरूने सिखाया होगा, वैसा विद्यार्थियोंने करके दिखाया। विद्यार्थियों के ऐसे अयोग्य



'संचयिता' संस्था के एक सांस्कृतिक कार्यक्रम में सुप्रसिद्ध सीने तारिका हेमा मालिनी के साथ संस्था के आचार्य श्री सुरेन्द्र सिंह ।

व्यवहार के कारण, और कला के प्रति उदासीनता रखने की वजह से गुरु की कला का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता; जिसके कारण गुरु के कलात्मक व्यवसाय पर बुरा असर पड़ता है।

मैं इसमें केवल विद्यार्थियों को ही दोष नहीं देना चाहता, क्योंकि इसमें सिखानेवाले गुरु का भी दोष होता है। कई गुरु ऐसा मानते हैं कि अपने काम पर, समय पर पहुँचना छोटापन है। और यदि कभी भूलसे समय पर पहुँच भी जाते हैं, तो अपनी प्रशंसा का पुल बाँधने लगते हैं; या विद्यार्थीकी व्यर्थ की तारीफ करके समय बिता देते हैं। गुरु के ऐसे स्वभाव से विद्यार्थियों के मन में गुरु के प्रति श्रद्धा समाप्त हो जाती है।

यदि इस श्रद्धा को हमेशा के लिए सुरक्षित रखना हो, तो गुरु को भी समय पर उपस्थित होकर, खुद परिश्रम उठाकर, विद्यार्थी को सिखाना और उसके हाव - भाव तथा अंग - अभिनय की छोटी-मोटी भूलों पर ध्यान देकर, शिक्षा देने का प्रयत्न करना चाहिए। उसके साथ - साथ अनेक प्रकारके ताल और संगीत - शास्त्र का भी ज्ञान देना चाहिए। विशेष रूपसे नृत्य में कोमलता लाने के लिए नृत्य सम्बन्धी व्यायाम भी करवाना चाहिए।

आधुनिक समय में गुरु और शिष्य के बीच में पहले के जैसा पवित्र सम्बन्ध कहाँ रहा? गुरु और शिष्य के इस गूढ़ और पवित्र सम्बन्ध को आजकल के कई विद्यार्थी ऐसा मानते हैं कि पैसा देने पर सब कुछ मिल सकता है, तो फिर गुरु के प्रति श्रद्धा और भक्ति-भाव रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। परंतु मेरी तो ऐसी मान्यता है कि विद्या तो एक ऐसा धन है कि जिसको श्रद्धा और भक्ति-भाव से ही प्राप्त कर सकते हैं।

धन और अभिमान के द्वारा प्राप्त की हुई कला अल्प समय के लिए ही होती है। नम्रता दिखाना, यह सभ्य समाज का शिष्ट व्यवहार है। लेकिन गुरु का धनके प्रति लोभ और अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए, शिष्य के सामने आवश्यकता से अधिक नम्रता दिखाना और अपना कर्तव्य भूल जाना, यह मेरे विचार से अनुचित व्यवहार है।

कलाकार को अपने व्यवसाय और प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के लिए हमेशा अपनी सच्चरित्रता पर सतर्कता पूर्वक ध्यान देना चाहिए। मैं अब तक सुनता आया हूँ कि लोग कलाकारों के चरित्र की आलोचना करते ही रहते हैं, जिसके कारण लोगों के मन में से कलाकारों के प्रति श्रद्धा और विश्वास समाप्त हो जाता है। ऐसे अनेक कलाकारों की चरित्रहीनता के कारण कला और कलाकारोंकी बदनामी होती है। जिसके कारण सम्मानित कलाकारों की इज्जत को धब्बा और व्यवसायको धक्का लगता है।

दूसरी ओर कलाकार को बदनाम करनेवालों को जब कलाकार की आवश्यकता पड़ती है, तब उसके सामने मधुर वाणी बोलकर, लम्बी-चौड़ी प्रशंसा करके, वे अपना काम बड़ी कुशलता के साथ पूरा करा लेते हैं। और अपना काम पूरा हो जाने के बाद उस कलाकार के सामने कभी नहीं देखते और न कभी उसे याद करते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि अपरिचित जैसा व्यवहार भी करते हैं। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि लोगों को कलाकारों के प्रति कितना प्रेम है!

कई लोग नृत्य-कला सीखने की इच्छा रखते हुए भी सीख नहीं सकते, कारण यह है कि वे लोग अपने आपको उच्च कोटि

के, खानदानी और सुसंस्कारी व्यक्ति मानते हैं, इसलिए अपने बच्चों को नृत्य सिखलाना बुरा समझते हैं । इसका एक उदाहरण मैं प्रस्तुत करता हूँ :-

एक दिन एक लड़की मेरे पास आई और उसने मुझसे कहा कि 'गुरुजी ! मुझे नृत्य सीखने की बडी इच्छा है, पर मैं सीख नहीं सकती; क्योंकि मेरी दादी मुझसे कहती है कि "नृत्य सीखना" अपने खानदान के लिए शोभास्पद नहीं माना जाता । इसलिए तू अब कभी भी नृत्य सीखने की बात मुझसे मत करना' । तब मैंने उस लड़की से कहा – बेटी तुम अपनी दादी माँ से एक प्रश्न पूछना कि अपने घर में या मंदिर में राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती आदि देवी-देवताओं की हम पूजा करते हैं; क्या वे नृत्य-कला के पुजारी नहीं थे ? उदाहरण के रूप में कृष्ण ने रासलीला की, भगवान शंकर ने ताण्डव नृत्य किया, और पार्वती लास्य नृत्य किया करती थीं । इतना ही नहीं, जिन देवी-देवताओं के रोम-रोम में नृत्य ने साकार रूप धारण कर लिया था, ऐसे नृत्य-प्रिय अपने इष्ट देव की भक्ति और पूजा करने में हमें लज्जा क्यों नहीं आती ?

पोती से ऐसी बात सुनकर दादी माँने कुछ प्रत्युत्तर तो नहीं दिया, किन्तु क्रोध से लाल होकर कहा कि छोटे मुँह बड़ी बात करती है ! शरम नहीं आती ! चल, हट ! आई है बड़ी उपदेश देनेवाली । मैं ऐसे कट्टर धर्मात्मा और अंध विश्वासी लोगों को दोष नहीं देता । क्योंकि ऐसे लोगों को धर्मशास्त्र और पुराणों का ज्ञान नहीं होता है । और जिनको धर्मशास्त्र और पुराणों का ज्ञान होता है, वे भी यदि अपनी लड़कियों को नृत्य की शिक्षा नहीं दिलाना चाहते, तो उसके भी कई कारण हो सकते हैं ।

उदाहरण के रूप में – आज कल के चलचित्रों में जो नृत्य प्रस्तुत होता है, उसे देखकर उनके दिल में खराब प्रभाव पड़ता है । दूसरी ओर आजकल के कलाकारों का चाल-चलन तथा नृत्य का प्रस्तुतिकरण देखकर भी उनके हृदय-पटल पर बुरा असर पड़ता है।

परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं होता है कि सभी प्रकार की कलाओं में, प्रत्येक स्थान पर, ऐसे अरुचि उत्पन्न करनेवाले दृश्य होते हैं । उदाहरण के रूप में मनुष्य को अच्छा या बुरा बनना स्वयं पर ही आधारित हैं । क्या मेनका और उर्वशी के साथ राधा और पार्वती की तुलना हो सकती है ?

ऐसे लोग भी कम नहीं हैं, जो अपनी पुत्री या बहन को नृत्य सिखलाने के लिए मनमें संकोच रखते हैं और रंगमंच पर नृत्य करना तुच्छ मानकर उसकी निन्दा करते हैं । परन्तु जिस समय किसी दूसरे की पुत्री या बहन रंगमंच पर नृत्य करने लगती है, उस समय, ये निन्दा करनेवाले और तथाकथित सभ्य माने जानेवाने लोग ही रंगमंचपर उसे मिलने के लिए आतुर होकर पंक्ति-बद्ध खड़े रहते हैं । इसका कारण स्पष्ट है कि वे उसकी अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा करके, उसके साथ हाथ मिलाने में अपना गौरव मानते हैं और गर्व का अनुभव करते हैं ।

कला सीखने वाले लोगों के कई प्रकार होते हैं । —

१ – कुछ लोग व्यर्थ के समय का उपयोग करने के लिए कला सीखते हैं।

२ – कई लोग, 'रंगमंच पर नृत्य करने के बाद लोग हमारी प्रशंसा करेंगे, समाचार-पत्रोंमें हमारा नाम और चित्र छपेगा,' इस दृष्टि

से कला सीखते हैं।

३ – कला के प्रति श्रद्धा का मानसिक संतोष भी मिलता है, और नृत्य से शारीरिक व्यायाम भी मिल जाता है, इस दृष्टि से कुछ लोग कला सीखते हैं।

४ – मेरे स्नेही और सगे–सम्बन्धी लोग सीखते हैं, तो मैं क्यों न सीखूं। इस प्रकार एक दूसरे का अनुकरण करके भी कुछ लोग कला सीखते हैं।

५ – अधिकतर लोग, नृत्य, संगीत, चित्रकारी आदि कलाएँ सीखते हैं, लेकिन किसी भी विषय में पूर्ण रूपसे दक्ष नहीं होते; वे तो केवल दिखाने के लिए ही सीखते हैं।

६ – कई माता - पिता अपनी बेटियों को इसलिए सीखने के लिए भेजते हैं कि लोग उनको सर्वगुण सम्पन्न मानकर, लग्न के लिए उनकी पसंदगी करेंगे।

७ – लड़कियों को सीखने की इच्छा न होने पर भी अभिभावकों के आग्रह के कारण सीखना पड़ता है। क्योंकि अपना बच्चा इधर उधर भटक कर कुसंस्कारी न बने और कला की शिक्षा प्राप्त करके अपना सर्वांगीण विकास करे, इस ध्येय से वे अपने बच्चों को भेजते हैं।

८ – कई लोग ऐसा सोच कर अपने बच्चों को कला की शिक्षा दिलाते हैं, कि इस कला का उपयोग करके भविष्य में वे अपना जीवन आत्मनिर्भर बना सकें। कारण कि "आज पैसा है, तो कल नहीं भी हो!"

९ – कई लोग कला के प्रति श्रद्धा न होने पर भी सीखते हैं। कारण कि कला से पैसा प्राप्त करके, अपना जीवननिर्वाह कर सकते हैं।

१० – कई लोग कला पर अपनी गूढ़ श्रद्धा होने के कारण, स्वाभाविक रूपसे सीखते हैं; परंतु कुछ साथियों और अन्य कलाकारों की नीति और दाँव-पेच के कारण तथा योग्य मार्ग-दर्शन न मिलने की वजह से, सीखना छोड़ देते हैं।

इसके परिणाम स्वरूप श्रेष्ठ कलाकार होने पर भी, थोडी-सी भी प्रगति नहीं कर सकते हैं। ऐसे लोगों की प्रतिभा और क्षमता यों ही बेकार चली जाती है। जब कला के क्षेत्र में, कला और कलाकार के प्रति ऐसी कूटनीति चलने लगती है, तब कला अधोगतिको प्राप्त होती है।

इस अधोगति का मूल कारण ऐसा है कि लम्बे-चौडे भाषण करके, आत्मप्रशंसा करके, अपना प्रचार करनेवाले कलाकारों की स्थिति 'हस्तिदंत' जैसी होती है। 'दिखाने के और -चबाने के और'।

बात ऐसी है कि कुछ लोग अपनी कला में खुद दक्ष होकर प्रगति के मार्ग पर न आगे बढते हैं, और न ईर्ष्यावश दूसरों को बढने देते हैं। और कुछ लोग खुद दक्ष तो होते हैं, लेकिन कोई दूसरा दक्ष होकर हमसे आगे न बढ जाय, इसलिए वे ऐसी कूटनीतिक चाल चलते हैं।

मैं तो ऐसा मानता हूँ कि कला का शुद्धिकरण तभी होता है, जब कलाकार ईर्ष्या-द्वेष और पक्षपातसे दूर रहकर सद्भावना के साथ

कला का प्रचार करे।

ऐसा करने से कला देवी स्वयं निखरकर, सुन्दरता के सर्वोच्च आसन पर विराजमान हो जाती है, और अपने प्रिय साधक कलाकार की साधना से प्रसन्न होकर, उसे भी अपने निकट ही सफलता और समृद्धि के सिंहासन पर बैठा देती है। दोनों एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं।

"कलाकारों की कठिनाइयाँ"

१. कोई कलाकार यदि कलाकारों को एकत्रित करके किसी संस्था की स्थापना करने का प्रयत्न करे, तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि कठिनाइयाँ सहन करने पर भी सफलता प्राप्त होती है, तो एक अपूर्व आनन्दका अनुभव होता है; परन्तु अधिकतर निष्फलता ही हाथ लगती है। इसका मूल कारण यही है कि कलाकार संस्था के साथ सम्बन्ध रखना नहीं चाहते। यदि कलाकार एकत्रित और संगठित होकर, परिश्रम करके उत्तम कार्यक्रम प्रस्तुत करें, तो सफलता मिल सकती है और साथ-साथ में हम आत्म-निर्भर भी बन सकते हैं। इससे किसी की खुशामद भी नहीं करनी पड़ेगी।

जिस प्रकार पहले खेत तैयार किया जाता है, फिर बीजारोपण होता है, उसके बाद मेहनत की खाद खिलाई जाती है, और परिश्रम का पानी पिलाया जाता है, इसके पश्चात् क्रमशः पौधे के रूपमें बीज बाहर आता है, और समय आने पर हमें अपने परिश्रम का सुन्दर फल प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार बड़ी शान्ति और निष्ठा से तैयारी करनी पड़ती है, धैर्य से श्रम-दान

करना पडता है, तभी किसी योजनापूर्ण कार्य में सफलता प्राप्त होती है। परन्तु कलाकार परिश्रम करना ही नहीं चाहते। उन्हें तो केवल पैसे कमाने से मतलब है। इस कारण कलाकारों का संगठन होना असंभव सा प्रतीत होता है। इस असंगठन और कलाकारों की कमजोरी का लाभ उठाकर, कुछ संस्था या निर्माता इन कलाकारों की कला और मेहनत से लाखों रुपये बना लेते हैं। धन ही नहीं, मान - सम्मान और यश – कीर्ति का स्वर्ण - पदक ये निर्माता ही बटोर लेते हैं। कलाकारों की कला और कल्पना, श्रम और साधना का सारा श्रेय इन्हीं निर्माताओं को बिना परिश्रम, आसानी से मिल जाता है। क्योंकि इनमें आदमी और अवसर का लाभ उठाने की कला है। ये वस्तु देकर नहीं, वस्तु दिखाकर मूल्य प्रप्त कर लेते हैं। ये उत्तम प्रकार के दलाल हैं। सारा महत्त्व इन्हीं को मिल जाता है। फिर इसमें कलाकार का महत्व और मूल्य कितना ! सौ में २५% प्रतिशत। और इतना भी, ये प्रखर लाभ-भक्षक और अनुपम अवसर-वादी, कलाकार पर उपकार समझकर ही देते हैं। यह सब असंगठन का फल है, प्रसाद के रूप में।

२. यदि किसी कलाकार को खुद के खर्च से या दूसरों से कर्ज लेकर कोई कार्यक्रम करना हो, तो उसके मन में अनेक प्रकार के विचार खड़े हो जाते हैं। –यदि कार्यक्रम में आशातीत सफलता न मिली, तो खर्च किया हुआ धन कहाँ से लाया जाय ?– इस कारण सभी प्रकार की कलात्मक कल्पनाओं के सृजन का विचार छोडकर, उसे अपने परिश्रम पर ही निर्भर रहकर जीवन व्यतीत करना पडता हैं।

३. जब किसी संस्था या निर्माता के अधीन कलाकार को काम करना पड़े तो कलाकार को उनके मत या सिद्धान्तों के अनुसार ही चलना



फेलोशिप सोसायटी के अध्यक्ष श्री जमनादास लादीवाला की धर्मपत्नी श्रीमती नर्मदाबहन श्री सुरेन्द्र सिंह का सन्मान करती हुई ।



पड़ता है, जिनको नृत्य-संगीत का सामान्य ज्ञान भी नहीं है. फिर भी वे अपनी महानता और महत्व का प्रदर्शन करने के लिए और दूसरों पर अपनी कुशलता की छाप डालने के लिए,- 'यह ठीक नहीं है, वह बराबर नहीं जमता; इसमें ऐसा करना चाहिए, वहाँ पर ऐसा होना चाहिए।" इस प्रकार बोलते रहते हैं। परंतु यदि जानकार और अनुभवी व्यक्ति सचमुच भूल सुधारने की द्रष्टिसे उचित मार्ग-दर्शन और सुन्दर सुझाव दे, तो उसे सहर्ष स्वीकार करनेमें कोई हर्ज़ नहीं है।

" किसी संस्थामें नृत्य–दिग्दर्शन "

यदि किसी संस्थामें नृत्य-दिग्दर्शन करना पड़े, तो असीम कष्ट सहन करना पड़ता है। क्योंकि कार्यक्रम के लिए युवतियों को एकत्रित करनेमें काफी समय बेकार व्यतीत हो जाता है। शेष समय में दो - ढाई घंटे का कार्यक्रम तैयार करने में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उन सबका वर्णन करना असम्भव-सा प्रतीत होता है। उदाहरण के रूपमें किसी कार्यक्रम की पूर्व तैयारी के लिए लड़कियोंको निश्चित समयपर बुलाया जाए, तबवे छः बजे के बदले साढे छः-सात बजे किसी तरह से एकत्रित होती हैं। यदि किसी समय लड़कियाँ समयानुसार आ भी जाएँ, फिर भी तीन - चार का समूह बनाकर, गपशप मारने बैठ जाती हैं। कभी-कभी दो-चार लड़कियाँ अनुपस्थित ही रहती हैं। और किसी तरह से जब अभ्यास आरंभ होने लगता है, तब वे घर जाने के लिए आतुर हो जाती हैं। यदि थोड़ा सा रुकने के लिए कहा जाए, तो परिणीता स्त्रियाँ कहने लगती हैं कि देरी होने पर सास-ससुर नाराज हो जाते हैं। विवाहित स्त्रियों की बातें सुनकर, अविवाहित लड़कियाँभी घर जाने के लिए तैयार हो जाती है। और कहने लगती हैं कि यदि देरी होती है, तो हमारे माता-पिता गुस्सा करते हैं, और पढ़ाई भी रह जाती है।

ऐसी अनेक प्रकार की विषम और विपरीत परिस्थितियों में कार्य-क्रम तैयार करने में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। इन सभी प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिए, उन पर क्रोध भी तो नहीं किया जा सकता! यदि किसी समय आवेश में आकर कुछ कह भी दिया जाता है, तो दूसरी बार आने के लिए ये तैयार नहीं होतीं! ऐसी लडकियाँ व्यावसायिक कलाकार नही होती हैं। संस्था को सहायता मिले और खुद को रंगमंच पर आने का सुअवसर प्राप्त हो, सहयोग की इस भावना से प्रेरित होकर, ये आती हैं। यदि व्यावसायिक कलाकार हों, तो उनसे कठोर परिश्रम करवाकर, सारा कार्यक्रम सुन्दर और आकर्षक बनाकर, हम प्रस्तुत कर सकते हैं, ऐसी अनेक कठिनाइयों के कारण नृत्य-दिग्दर्शक अपनी कला, कल्पना और योग्यता तथा इच्छानुसार, भव्य कलात्मक, रोचक, आकर्षक और मनो-रंजक कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं कर सकता।

"विद्यालय में शिक्षक के रूपमें"

विद्यालय में नृत्य–शिक्षक के रूपमें काम करने के लिए जाना पड़े, तो सर्व प्रथम यही प्रश्न पूछा जाता है कि आप शास्त्रीय नृत्य एवं लोकनृत्य जानते हैं या नहीं! इस प्रकार के प्रश्न का अर्थ मुझे तो ऐसा लगता है कि एक ही नृत्य–शिक्षक से वे सब कुछ करवाना चाहते हैं।

जिस समय विद्यालय में नृत्य-शिक्षक के रूप में काम करने का अवसर प्राप्त होता है, उस समय अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ सामने आती हैं। उनमें सबसे पहली और बडी कठिनाई है – विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता, आदर का अभाव, और अश्रध्दा!

वर्तमान युग में विद्यार्थियों के अन्तःकरण में स्वदेशी और प्राचीन कला के प्रति कोई रुचि नहीं है। क्योंकि आजकल के विद्यार्थियों में विवेक और विनय, श्रध्दा और मर्यादा, आदरभाव और अनुशासन आदि सात्विक गुण, नाममात्र के लिए भी नहीं रहे हैं। इसका कारण हो सकता है—नरम शासन! आज छात्र-छात्राओं को कुछ भी नहीं कहा जा सकता, और न ही उन्हें किसी उद्दंड और अभद्र व्यवहार पर कोई सज़ा ही दी जा सकती है; इससे उन्हें सुधरने के लिए चेतावनी नहीं मिलती, बल्कि बिगड़ने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। यदि कभी, किसी समय, आवेश में आकर शिक्षक किसी अयोग्य और अनुशासनहीन व्यवहार के लिए उन्हें दंड दे दे, तो शिक्षक को विचित्र परिस्थितियों का सामना करना पडता है और अनेक बातें सुननी पड़ती हैं। कभी कभी शिक्षक के सामने ही अनुशासनहीनता का मामला खडा कर दिया जाता है। छात्र-छात्राओं के अभिभावक विद्यालय में आकर आचार्य के पास शिक्षक के विरुध्द शिकायत करते हैं। कभी-कभी तो अभिभावक सीधे शिक्षक से ही बहस करने और झगडने लगते हैं। इन सारी बातों को देखकर छात्र-छात्राओं के दिल से अनुशासन का भय भाग जाता है और उनके मन में अहंकार और शिक्षक के प्रति-द्वेष भाव आ जाता है। इसका मुख्य कारण है-शिक्षा के क्षेत्र में नरम नीति! शासन, प्रशासन और अनुशासन; नम्रता से नहीं, कठोरता से चलाए जाते हैं। कानून और अनुशासन का पालन प्रेम की अपेक्षा भय से अधिक होता है। प्रेम हृदय की वस्तु है, शासन दिमाग की चीज़ है। शासन और संस्था दोनों दिमाग से चलाये जाते हैं। कानून और अनुशासन का कड़ाई से पालन कराया जाता है। अनुशासन हीनता के और भी बहुत से कारण हैं। विवेक का अभाव

होने के कारण विद्यार्थी अच्छे-बुरे, दूषित और निर्दोष, हितकर और अहित-कर, हानिकारक और लाभप्रद में भेद नहीं कर सकते । इसलिए मनोरंजन के लिए कोई भी चलचित्र देखते हैं, किसी भी साथी के साथ फिरते हैं और सभी तरह के साहित्य पढते हैं। दूषित चलचित्र, गन्दे साहित्य और बुरे साथियों के कारण उनमें चरित्रहीनता पैदा होती है। उनके जीवन में दिखावट और बनावट प्रवेश करती है । ये देशी सरलता को छोड, विदेशी आडम्बर को अपनाने लगते हैं। वे बिना सोचे-समझे विदेशी वस्त्रों की नकल करते हैं। भले ही ये कपडे उनके शरीर पर शोभा दें या न दें, लेकिन वे इनको अवश्य अपना-येंगे। मोटा लडका चुस्त इटालियन पैंट, पतला लडका ढीला-ढाला बेल-बॉटम पहनकर अपनी कुरूप सुन्दरता का प्रदर्शन करता है । ऊँचा लड़का हाईहील और दुबला लड़का हेवीहील के जूते पहनकर अपने आप को विदूषक साबित करता है। यह है फैशन की नकल और दिमाग का दिवाला। आजकल के लडकों में अपने धर्म संस्कृति तथा सभ्यता का ज्ञान कहाँ है ? फिर श्रद्धा, और रुचि कैसे हो सकती है ?

ऐसे लोग तो, विदेशी फैशन करना, चलचित्र देखना, गपशप लडाना रेडियो सुनना, दूर दर्शन देखना, और दूसरे अनेक मनोरंजक साधनों के पीछे समय बिताने में ही अपनी शान समझते हैं। चलचित्र देखकर इनका मन हमेशा चंचल ही रहता है । ये रेडियो ध्यानसे सुनते हैं, किसी की बात की तरफ ध्यान नहीं देते। रेडियो में तार का सम्बन्ध नहीं होता, ये भी किसी से सम्बन्ध नहीं रखते, बिना लगाम के घोडे की तरह स्वच्छन्द घूमते रहना पसंद करते हैं। दूरदर्शन दूर की चीजों के दर्शन कराता है, इसलिए ये, पास की अपनी चीजों को नहीं देख सकते; दूर की विदशी वस्तुओं के ही दर्शन करते हैं और उन पर मोहित रहते हैं ।

इन सभी दोषों के मूल में अभिवावक, संरक्षक, कुसंगति, अश्लील और अयोग्य साहित्य तथा थोडा-बहुत अदूरदर्शी शिक्षक का भी समावेश होता है। इस प्रकार के चाल-चलन, और अनुशासन हीनता के कारण छात्र-छात्राओं को कलात्मक शिक्षा देकर, तैयार करने में असीमित कठिनाइयों का सामना करना पडता है।

नृत्य-शिक्षकों को विद्यालय के भवनकोष के सहायतार्थ नृत्य-नाटिका तथा विविध कार्यक्रम तैयार करना पडता है। इसके अलावा पूरे वर्ष में सामयिक कार्यक्रम भी तैयार करना होता है। जैसे कि – वर्षाकाल में 'वर्षा मंगल'; जन्माष्टमी के अवसर पर 'कृष्ण-लीला'; वसंत में, 'वसंतोत्सव'; नवरात्रि के लिए 'विविध कार्यक्रम' आदि। इसके अतिरिक्त 'अभिवावक-दिवस, आदि भी मनाये जाते हैं। इन कार्यक्रमों को तैयार करने में असाधारण कठिनाइयाँ और कष्ट सहन करने पडते हैं। इसका कारण यह है कि सभी छात्र-छात्राओं को नृत्य के बारे में सामान्य ज्ञान ही होता है। उन्हें अधिक ज्ञान और अभ्यास की आवश्यकता होती है। और विद्यालय में, नियम के अनुसार छात्रों को नियत समय से अधिक रोक नहीं सकते। बच्चे अपने-अपने वर्गों में से आते हैं, और उन्हें समझाकर सिखाने में ही आधा समय पूरा हो जाता है। प्रत्येक वर्ग के अ, ब, क, ई, ऐसे चार विभाग होते हैं। इन सभी विभागों को एक-एक 'समूह-नृत्य' नहीं दिया जा सकता है। इसका कारण यह है कि एक नृत्य-नाटिका में इतने सब 'समूह-नृत्यों' का समावेश नहीं हो सकता।

इस कारण अ, ब, क, ई चारों विभागों में से योग्य छात्र-

छात्राओं की पसन्दगी करने के बाद ही 'समूह-नृत्य' तैयार करने पड़ते हैं । तत्पश्चात नृत्य-नाटिका के मुख्य पात्र नायक-नायिका और अन्य पात्रों के लिए विचार-विमर्श करने के बाद ही मुख्य पात्रों की पसंदगी की जाती है । इसका मुख्य कारण यह है कि विद्यालय के छात्र - छात्राओं को नृत्य का सामान्य स्तर का ज्ञान भी नहीं होता है ।

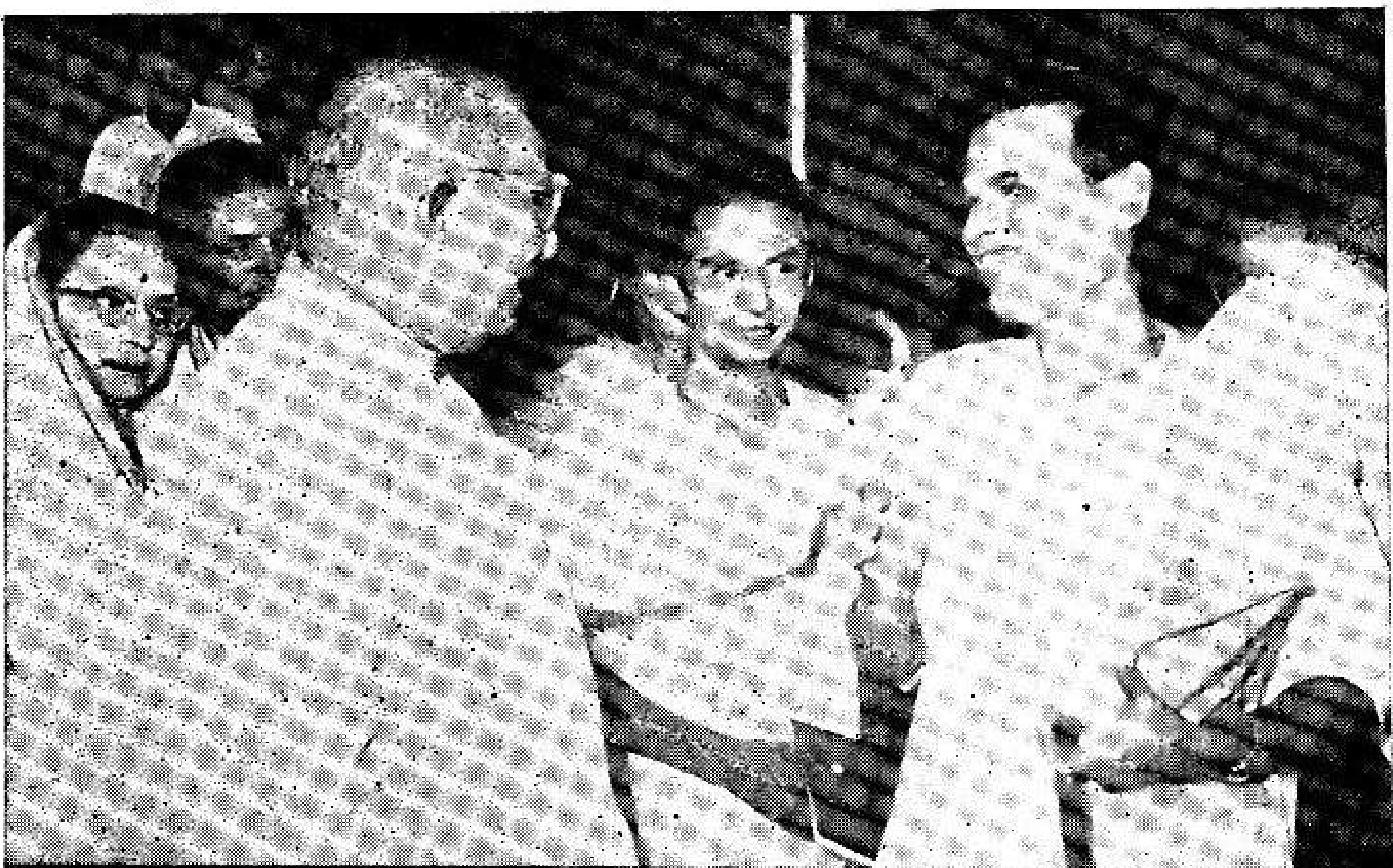
छात्रों को पूर्ण और अचूक रूप से नृत्य की शिक्षा देने के बाद, जब उन्हें व्यवहार में नृत्य करके दिखाने के लिए कहा जाता है, तब उन्हें छात्राओं के सामने नृत्य करके दिखाने में लज्जा का अनुभव होता है । इतना ही नहीं, अगर दिखाते भी हैं, तो बराबर और अच्छी तरह नृत्य करके दिखा नहीं सकते । उनका नृत्य बराबर और संतोषजनक न होने के कारण, लड़कियों को ही लड़कों का पात्र देना पड़ता है । और इनमें भी स्वस्थ और सुडौल शरीरवाली तथा सुन्दर और आकर्षक मुखाकृतिवाली छात्राएँ अल्प संख्या में ही सुलभ होती हैं । उदाहरण के लिए – रावण या भीम के पात्र में भव्यता, पौरुष, और वीरता की झलक का होना जरूरी है, राम, कृष्ण और शिव में आकर्षण, सौम्यता और देवत्व के तेज का दर्शन अवश्य होना चाहिए, तथा सीता, राधा, पार्वती में सुन्दरता सुडौलता और लालित्य का माधुर्य अत्यंत आवश्यक है । इसी तरह उर्वशी, मेनका, रंभा और तिलोत्तमा में स्वस्थ शरीर का उभार, लोच और लचक तथा चंचलता और यौवन का आकर्षण होना अनिवार्य है । तभी नृत्य-नाटिका का सुन्दर आकर्षक और प्रभावशाली प्रदर्शन हो सकता है । हिन्दी में एक कहावत है कि – 'सुर गाये और रूप नाचे !' इसका अर्थ ऐसा है

कि जिस गायक या गायिका का स्वर मधुर होता है, वह कुछ भी गाये, अच्छा ही लगता है और जिस नर्तक या नर्तकी का शरीर सुन्दर, कोमल और आकर्षक होता है, वह कैसा भी नाचे, अच्छा ही लगता है। यदि गायक-गायिका के कंठ में माधुर्य और कोमलता न हो, तथा नर्तक नर्तकी के तन में सुन्दरता, लोच-लचक और लालित्य न हो, तो श्रोता और प्रेक्षक को यह सारा गीत-नृत्य सुहावना और लुभावना नहीं लगेगा। उन्हें इसका स्वाद फीका ही मिलेगा। इसी लिए नृत्यकार में सौंदर्य और लालित्य का होना बहुत जरूरी है।

ऐसी स्थिति में यदि छात्राओं को रावण या शिव का पात्र देकर, उन्हें ताण्डव शैली में नृत्य सिखाकर, रंगमंच पर पेश करना हो तो इसके लिए अथक मानसिक और शारीरिक श्रम करना पडता है। ऐसे कार्यक्रम में विद्यालय के दो सौ [२००] से दो सौ पचास [२५०] छात्र-छात्राएँ भाग लेते हैं। और ऐसे कार्यक्रम से उन्हें कला और संस्कृति का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। साथ ही उनके अभिभावकों को भी आनन्द और मनोरंजन मिलता है। ढाई सौ छात्र-छात्राओं का अध्ययन न बिगड़े, इसके लिए इस बात को ध्यान में रखकर, कार्यक्रम तैयार करने में, अनेक कठिनाइयों को सहन करके भी सतर्कता और सावधानी बरतनी पड़ती है। इन कठिनाइयों को दूर और कम करने के लिए और तैयारी में सरलता लाने के लिए, शिक्षक आचार्य के साथ बैठकर विचार-विमर्श करते हैं। योजना बनाई जाती है, आचार्य को सुझाव दिये जाते हैं। कार्यक्रम तैयार करने की अवधि तक नृत्य-शिक्षण और उसके अभ्यास के लिए यदि नृत्य-शिक्षक को सप्ताह में तीन दिन के बदले छः दिन दिये जायें, तो थोडी-बहुत कठिनाइयों में कमी हो सकती है, काम में सरलता और

सुगमता आ जाती है और काम के दबाव में राहत मिलती है। परन्तु आचार्य श्री इन कठिनाइयों को समझने के बावजूद भी हमारी कठिन समस्या को सुलझाने का प्रयत्न नहीं करते। वे शिक्षा को अधिक महत्व देते हैं, नाचने-गाने और तमाशा दिखाने को नहीं। यद्यपि नाच-गा कर, तमाशा दिखाकर और लोगों का मनोरंजन करके ही हम लाखों रुपये कमा देते हैं, विद्यालय के 'भवन' के लिए! इन सभी विषम परिस्थितियों के कारण कलाकार की इच्छानुसार, जैसा चाहिए वैसा कार्यक्रम नहीं बन सकता; जिसके कारण कलाकार निराश हो जाता है। इतना तनतोड श्रम करने के बाद कलाकार को, श्रम के अनुसार पारिश्रमिक फल-यश भी नहीं मिलता। अधिकारी, प्रशंसा के दो मधुर औपचारिक और व्यावहारिक शब्द कहके प्रोत्साहन देने के बदले, भूलें निकालकर, आलोचना करके, व्यंग की कर्कश बातें सुनाकर, कलाकार के मन को ठेस पहुँचाते हैं; उसे पीडा और दुःख ही देते हैं। कितने सुख की बात है, कि जितने भी लोग अपने-अपने कार्य क्षेत्रों में निर्धारित समय के अतिरिक्त काम करते हैं, उन्हें अतिरिक्त काम के बदले पारिश्रमिक पुरस्कार दिया जाता है, लेकिन यह बड़े दुःख की बात है, कि कला के क्षेत्र में हमारे जैसे, तनतोड़ काम करनेवाले, कर्त्तव्य-चेता कलाकारों को, जो कमाकर काफी धन देते हैं, उन्हें चार पैसे प्रोत्साहन-पुरस्कार के रूप में भी नहीं मिलते। कैसा विचित्र न्याय है दुनियाका!

भाग्यवान कलाकार कौन? – हज़ारों कलाकारों में से यदि किसी एक कलाकार को धन-सम्पत्ति, मान-सम्मान और यश-कीर्ति आदि मिल जाय, तो यह उसका सौभाग्य! किसी गुरु को उसके



'सरला सर्जन' के एक सांस्कृतिक समारोह में बम्बई की तत्कालीन मेयर श्रीमती सुलोचना बहन मोदी और श्री रतिलाल नाणावटी के साथ श्री सुरेन्द्र सिंह।

प्रशंसक किसी सज्जन पुरुष या सम्भ्रांत महिला की सहायता से, या किसी भक्त शिष्य के सहयोग से पर्याप्त धन-सम्मान मिल जाय, तो उसीको भाग्यवान कलाकार कहते हैं। ऐसे तो हजारों कला सीखने वाले विद्यार्थी होते हैं, लेकिन उनमें से कोई एक ही गुरुभक्त, प्रतिभाशाली और परिश्रमी तथा गंभीर शिष्य मिलता है, जो कला के लिए अपना तन-मन धन, सर्वस्व अर्पण करने के लिए तैयार रहता है। अपने कठोर परिश्रम या रुपये-पैसे से कला को प्रगति के पथ पर अग्रसर करनेवाले कलाप्रिय और गुरुभक्त शिष्य-शिष्याओं के गुरु को ही सफलता और सिद्धि मिलती है। उसी को मान-प्रतिष्ठा, धन-सम्पत्ति और यश-कीर्ति और सुख-सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार उत्साही शिष्य के सहयोग से गुणवान गुरु नये-नये कार्यक्रम तैयार करके, जनता के सामने अपनी उत्तम कला और प्रतिभा दिखाने का सुअवसर मिलता है और कला-पारखियों से प्रशंसा प्राप्त होती है।

"अनुबन्धन का उल्लंघन"

कई बार ऐसा भी होता है कि किसी संस्था या निर्माता के साथ नृत्य-दिग्दर्शक का अनुबन्धन हो जाता है। इस अनुबन्धन की शर्त के अनुसार नृत्य दिग्दर्शक को नृत्य रचना और दिग्दर्शन के लिए अमुक राशि पारिश्रमिक के रूप में मिलेगी। और फिर प्रत्येक अतिरिक्त 'प्रदर्शन' या 'शो' के लिए एक निश्चित रकम मिलती रहेगी। इस रकम को अधिकार पुरस्कार 'रॉयल्टी' कहते हैं। जब प्रथम प्रदर्शन के बाद कलाकार को पूरे पैसे नहीं मिलते हैं, तो वह नाराज हो जाता है। अपने विपक्षी को

सावधान करने के लिए वह उसे ललकारता है कि-आप इस प्रकार अनुचित व्यवहार करेंगे, तो कोई भी कलाकार आपके यहाँ काम करने नहीं आयेगा। ऐसी चेतावनी देने पर भी कलाकार को असफलता ही मिलती है, क्योंकि दूसरे स्वार्थी कलाकार कूद पड़ते हैं और कम पैसे में ही काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसे स्वार्थी कलाकारों के व्यवहार के कारण नृत्य-दिग्दर्शक की ललकार का निर्माता पर कोई असर नहीं पडता, और उसकी चेतावनी का कोई अच्छा परिणाम नहीं आता। हकदार, मेहनती होता है, पछताता है; अवसरवादी, स्वार्थी थोड़ा पाता है, झड़प लेता है; और चालाक निर्माता पूरा लाभ उठाता है। दो बिल्लियों की रोटी बन्दर खा जाता है।

नृत्य-दिग्दर्शक की कठिनाइयाँ :—

[१] नृत्य-नाटिका तैयार करने में गीत लेखक की प्रथम और प्रमुख भूमिका होती है। यदि वह अच्छा न लिखे और समय पर न दे, तब तक सारा मामला स्थिर और ठप्प पडा रहता है। सिर्फ बातें ही होती हैं, काम नहीं होता, और समय सरकता जाता है। फिर बहुत कम समय हाथ में रह जाता है, जिसमें गीत-संगीत और नृत्य-रचना करके और कलाकारों को अभ्यास देकर तैयार करना बडा कठिन होता है। कुछ गीतकार शुरू में दो-चार गीत दे देते हैं, संगीत तैयार हो जाता है, नृत्य-रचना हो जाती है और अभ्यास चलने लगता है। लेकिन अभ्यास करते-कराते सब थक जाते हैं, ऊब जाते हैं; लेकिन नये गीत नहीं आते। उनके लिए तपस्या की जाती है, प्रार्थनाएँ होती

हैं, तब कहीं कविराज प्रसन्न होकर मेघराज की तरह कविता की कुछ बूँदें छिड़क देते हैं और हमारी प्यास कुछ-कुछ बुझती रहती है, काम चल जाता है और यही क्रम अन्त तक चलता रहता है। यदि गीत-संगीत समय पर मिल जायें, तो काम कितना आसान हो जाये!

[२] नृत्य-दिग्दर्शक की कठिनाई यह है कि वह नृत्य-रचना के लिए संगीत दिग्दर्शक पर निर्भर रहता है। जब तक संगीतकार गीत की धुन बनाकर, संगीत तैयार करके नहीं देता तब तक नृत्य-दिग्दर्शक नृत्य-रचना नहीं कर सकता, कई बार ऐसा होता है कि नृत्य-दिग्दर्शक संगीत-दिग्दर्शक से संगीत माँगता है, ताकि उस पर वह नृत्य-रचना शुरू करे; तब संगीत दिग्दर्शक जवाब देता है कि वह कुछ जरूरी काम में फँसा था, और धुन बनाने के जोश [मूड] में नहीं था। यदि उसे कुछ समय और दिया जाय, तो अच्छा होगा। इस प्रकार यों ही बेकार कुछ समय बीत जाता है। कभी ऐसे संगीतकार भी मिल जाते हैं, जो गीत के अर्थ के अनुसार संगीत नहीं बनाते। जब उसमें कुछ परिवर्तन करने के लिए कहा जाय, तब धीमे स्वर में दबी आवाज में, अपने आप बड़बड़ाने लगते हैं; या फिर ध्यान-मग्न होकर, शून्य-दृष्टि से किसी एक तरफ घूरते रहते हैं। दूसरी खास बात यह है कि प्रायः संगीतकार 'खेमटा' और 'कहरवा' तालों में ही संगीत-रचना करते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि अलग-अलग ताल में गीत की धुन बैठाने से नृत्य-दिग्दर्शन को नये-नये ढंग की रचना करने का अवसर मिलता है। नृत्य में नवीनता आती है, दर्शकों को विविधता मिलती

है । और उनको अच्छा मनोरंजन प्राप्त होता है । नृत्य नाटिका में पार्श्व-संगीत का भी महत्वपूर्ण स्थान है, इससे नाटिका के दृश्यों में उठाव आता है । पात्र या परिस्थिति की भव्यता या गम्भीरता का योग्य प्रभाव पडता है । दर्शकों पर नाटकीय प्रसंगोंकी उचित छाप पड़ती है । लेकिन कुछ बेपरवाह और अनुभवहीन संगीत दिग्दर्शक, जहाँ चाहिए वहाँ विशेष प्रभावकारी संगीत नहीं देते । भेंड़-बकरी और हाथी-घोडे, सबका एक ही लकड़ी से संचालन करते हैं । कुछ संगीतकार ऐसे भी हैं, जिन्हें नृत्य-रचना या अभ्यास के समय गाने के लिए कहा जाय, तब वे चिढकर कहते हैं, कि 'हम कोई टेप-रेकॉर्ड हैं क्या, कि जब चाहो, तब शुरू हो जाये ?'

नृत्य-नाटिका की सफलता के लिए नृत्य-दिग्दर्शक को सब के साथ बैंठकर अपना दृष्टिकोण समझाना, विचार-बिमर्श करना, उनकी कठिनाइयाँ सुनना, समझना और उनका पूर्ण सहयोग पाने के लिए, उनकी समस्याओं को हल करना पडता है । अपने-अपने कार्य में कुशल, गीतकार, संगीतकार, प्रकाश-आयोजक; सान्निवेश, वेशभूषा, और रूपसज्जा में प्रवीण कलाकारों के साथ सलाह-मशविरा करना पडता है । इन कलाकारों की अपनी-अपनी कठिनाइयाँ और समस्याएँ होती हैं, जिनका समाधान और हल कर देने से सारा काम-काज सुचारू रूप से चलने लगता है । नृत्य-नाटिका में कभी-कभी कहीं खाली जगह होती है, जहाँ कुछ भी नहीं होता; न गीत न संवाद । ऐसे स्थान को हम संगीत और नृत्य से भर देते हैं । कभी-कभी सेटिंग वाले के सामने समस्या खडी हो जाती है । उसे सेटिंग बदलने के लिए काफी समय नहीं मिलता । ऐसे समय में मंच के अगले भाग में एक परदा लगाकर [गिराकर] उस के आगे कुछ कार्यक्रम बढा दिया जाता है । इसी तरह वेशभूषा

वाले को भी समय दिया जा सकता है। यह सब काम, संगीतकार के सहयोग से नृत्य-दिग्दर्शक को ही करना पड़ता है। कई बार छोटे हॉल में, जगह का अभाव होने के कारण, फ्लड लाईट या स्पॉट लाईट की कठिनाई दूर करने के लिए नृत्य-दिग्दर्शक को नृत्य-रचना में कुछ परिवर्तन करके उसकी परिधि को सीमित कर देना पड़ता है, ताकि उस स्थान पर स्पॉट लाइट आसानी से पड़ सके।

नृत्य-नाटिका एक भव्य-प्रदर्शन है। यह सहयोग से सम्भव होता है। इसके अनेक विभाग हैं। हर विभाग की अपनी अलग विशेषता है। हर विशेष विभाग का संचालक अपनी कला में कुशल होता है। ये सब संचालक, नृत्य-दिग्दर्शक की सलाह और मार्ग-दर्शक के अनुसार काम करते हैं। नृत्य-दिग्दर्शक पर ही नृत्य-नाटिका की सारी जिम्मेदारी होती है इस जिम्मेदारी को निभाते और नृत्य-नाटिका का संचालन करते समय, अनेक कठिनाइयों और कष्टों को सहन करना तथा मानसिक और शारीरिक श्रम करना पड़ता है। लेकिन कभी-कभी इसमें भी कूटनीति घुस जाती है। पत्र-पत्रिकाओं के समालोचक जब एकांगी आलोचना करते हैं, अपने प्रिय कलाकार की ही प्रशंसा करते हैं; नृत्य-दिग्दर्शक या दूसरा कोई परिश्रमी कलाकार इस श्रेय से वंचित हो जाता है, तो दुःख होता है। त्रुटियों और सुधारों के लिए, जानकर समालोचक सलाह और सुझाव दे सकता है, लेकिन सृजन और श्रम के लिए किसी कलाकार को श्रेय न देना, उसकी पूरी तरह उपेक्षा करना, जान-बूझकर अन्याय करना ही है।

नृत्य-नाटिका मानव-शरीर के समान होती है। मानव शरीर के सारे अंगों का नियंत्रण और संचालन दिमाग के द्वारा होता है। उसी प्रकार नृत्य-नाटिका का नियंत्रण और संचालन नृत्य-दिग्दर्शक

करता है। नृत्य-नाटिका में नृत्य ही प्रधान होता है और प्रधान को महत्व मिलना ही चाहिए। इस लिए जब नृत्य–नाटिका की समालोचना में नृत्य–दिग्दर्शक की अवहेलना होती है, तब दुःख होता है कि यहाँ भी राजनीति की तरह कूटनीति चलती है !

नृत्य–नाटिका का माध्यम ही नृत्य है। नृत्यमें अंगुलियोंकी मुद्राओं, मुखकी भाव-भंगिमाओं और शरीर के अन्य अवयवों के हलन-चलन का समावेश होता है। नाटिका की सम्पूर्ण कथा को इसी माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। पूरी नृत्य–नाटिका इसी भाषा में दिखाई और समझाई जाती है। ये मुद्रायें और भाव–भंगिमायें अर्थपूर्ण होती हैं और सम्पूर्ण नृत्य, ताल पर चलता है। खेल-कूद, लडना-झगडना युद्ध - शिकार, उत्सव-मेला सभी प्रसंग ताल-मेल के अनुसार ही चलते हैं। जहाँ भी ताल का मेल मिलता नहीं, वहाँ नृत्य का फूल खिलता नहीं। नृत्य के साथ ताल का मेल बिगड़ जाने से बड़ी गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

गानेवाले को कभी-कभी गीत गाते-गाते रुकना भी पड़ता है, क्योंकि नृत्य को सुन्दरता, लहर और मस्ती प्रदान करने के लिए, कभी-कभी गीत के मध्य में केवल वाद्य-संगीत या मृदंगका तोडा डाल दिया जाता है, इस तोडे के बाद ही, तुरंत, अधूरा गीत फिर उठा लेना पडता है, अगर ताल की गति में जरा भी चूक हो गई, तो सारा मजा किरकिरा हो जाता है, सारा काम फूहड बन जाता है ! यह काम उसी तरह चौपट हो जाता है, जिस तरह कोई अभिसारिका अपने प्रेमी से मिलने और उसे प्रसन्न करने के लिए, सम्पूर्ण सोलह सिंगार करके और अच्छी तरह सज–धज के

जाती है और तन्मयता की स्थिति में अनजाने में (भूलसे) अपने चेहरे के पसीने को पोंछ देती है। इस छोटी-सी असावधानी के कारण उसके चेहरेका रंग-सिंगार, उसकी आँखों का काजल ही इधर-उधर फैलकर, उसके रूप को विकृत कर देता है, उसे भद्दा और भयंकर बना देता है; और उसका सारा खेल बिगड़ जाता है।

यदि गायक या गायिका गीत की किसी पंक्ति को एकबार गाने के बदले, भूल से दो बार गा दे, तो रंगमंच पर नृत्य करनेवाले कलाकार बड़ी कठिनाई में पड जाते हैं। और अगर कलाकार किसी रचना के अंश को एक बार के बदले, दो बार कर दे; अथवा ताल चूक जाये, तो इस कारण भी अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं। इन सभी सम्भाव्य कठिनाइयों से बचने के लिए, हमें सतर्क रहना चाहिए। और इन्हें हल करने के लिए पहले से ही उपाय सोच लेना चाहिए और उसके अनुसार ही तैयार रहना चाहिए।

नृत्य-नाटिका का पूरा समूह एक समाज के समान होता है। यदि इस समाज का प्रत्येक विभाग सहयोग से काम करके अपना धर्म निभाये और प्रत्येक विभाग का हर एक व्यक्ति अपने काम को अपना कर्त्तव्य समझकर करे, तो सारा काम सरल और सुगम हो जाये। यह खुशी की बात है कि इस समाज का हर कलाकार - गायक, वादक, नर्तक-अपने-अपने काम में मस्त और तल्लीन होकर, अपनी भूमिका निभाता है, ताकि उसका अपना कार्य बहुत ही सुन्दर और प्रशंसनीय हो। लेकिन यह तन्मयता इतनी नहीं होनी चाहिए कि साथी कलाकारों से उसका साथ छूट जाये, और

उनसे उसका ताल-मेल न मिले । क्योंकि ज्योंही ताल-मेल का साथ और सहयोग छूटेगा, त्योंही सारा काम बिगड़ जायेगा । इसलिए गायकों और वादकों को नर्तक कलाकारों के अवागमन-प्रवेश और प्रस्थान-पर ध्यान रखकर काम करना चाहिए, नहीं तो काफी अड़चनें, पैदा हो सकती हैं । इन सभी सम्भावित अड़चनों, कठिनाइयों और भूलों से बचने के लिए, नृत्य-दिग्दर्शक को सभी कलाकारों के साथ बैठकर, इन वस्तुओं [तथ्यों] की ओर संकेत कर देना चाहिए, और अपनी ओर से उचित सलाह और निर्देश दे देना चाहिए, ताकि वे इस सूचना को दर्ज कर लें, और काम में तन्मय रहते हुए भी सजग रहें ! अपने कार्यक्रम में मैं हमेशा इस बात पर पूर्व-कल्पना करके उचित संकेत, सलाह और निर्देश दे देता हूँ ।

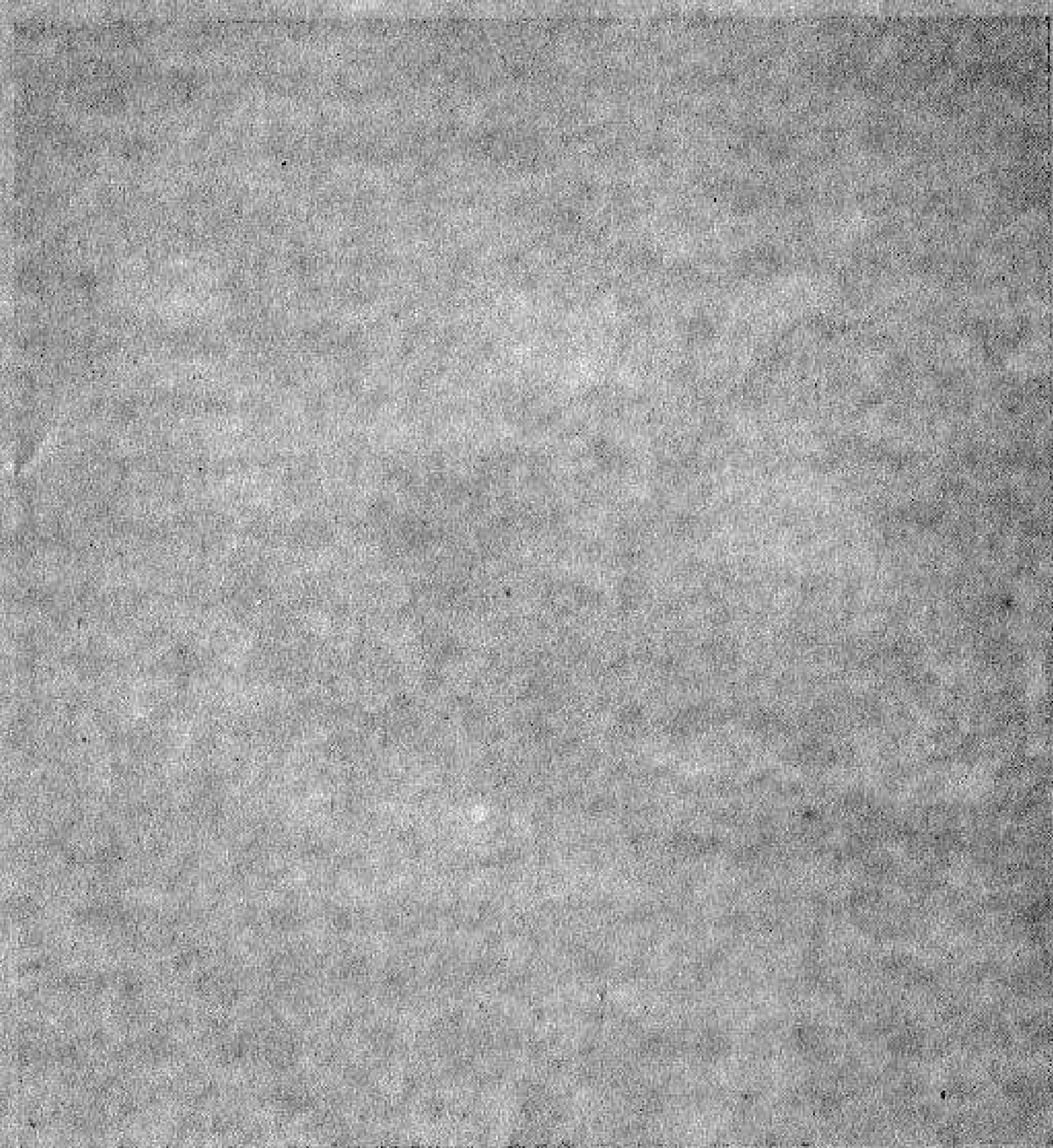
कभी-कभी मेरे मन में ऐसा विचार उठता है, कि क्या नृत्य-नाटिका का उत्तरदायित्व केवल नृत्य दिग्दर्शक का ही होता है? दूसरे किसी का नहीं ? क्या इस कार्यक्रम का यश, पैसा, प्रशंसा आदि लाभ, सिर्फ नृत्य-दिग्दर्शक को ही मिलता है ? क्या दूसरे लोग मुफ्त में काम करते हैं? यह कहावत भी ठीक ही तो है - "मजा करें ये देवी - देवता, और गाली सहे पुजारी ! सेवा करे पुजारी और माल खाये भंडारी !"

नृत्य -- स्पर्धा — निर्णायकों की द्विधा

हमारे समाज में प्राय: कहीं न कहीं, किसी न किसी स्पर्धा का आयोजन होता ही रहता है । इन स्पर्धाओं में अद्भुत या विचित्र वेशभूषा, शीघ्र वक्तृत्व, लेखन और नाट्य-स्पर्धा, कला-कौशल



एक नृत्य स्पर्धा में आमंत्रित निर्णायकों के रूप में उपस्थित श्रीमती दीपिका वाघवाला और श्री सुरेन्द्र सिंह ।



खेल कूद, स्वास्थ्य-सौन्दर्य आदि स्पर्धाओं का समावेश होता है। इन स्पर्धाओं का आयोजन, किसी विशेष ध्येय से प्रेरित होकर किया जाता है। फिल्म-निर्माता या पत्र-पत्रिकाओं के संचालक सौन्दर्य प्रतियोगिताओं का आयोजन करते हैं, ताकि निर्माता के चल चित्रों के लिए सर्व सुन्दरी नायिका या अभिनेत्री सस्ते में मिल जाये, और संचालक के पत्र-पत्रिका को मुफ्त में ही विशेष विज्ञापन का लाभ हो जाये। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनको सुन्दरियों के सम्पर्क में आने से ही अद्भुत रोमांच और उत्तेजना का आनन्द प्राप्त हो जाता है। कुछ छोटी-बड़ी सामाजिक संस्थायें, अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए, सदस्यों को सक्रिय रखने और उनसे चन्दा वसूल करने के लिए, अद्भुत या विचित्र वेशभूषा, शीघ्र वक्तृत्व, या खेल-कूद की स्पर्धा का आयोजन करती हैं। इससे जान-पहचान बढ़ती है, समाज के लोग एक दूसरे के समीप आते हैं, आपस में सम्पर्क होता है और सम्बन्ध बनता है।

कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक संघटन ऐसे भी हैं, जो कला और संस्कृति के उत्थान के लिए सदा तत्पर रहते हैं। वे कला और संस्कृति का विकास, प्रचार और प्रसार करने के लिए कलाकारों को प्रोत्साहन देते हैं। सांस्कृतिक कलाओं की स्पर्धाओं का आयोजन करते हैं। इससे कला के प्रति आकर्षण, प्रेम और रुचि पैदा होती है; जीवन में चेतना और जागृति जागती है। उनका यह भी उद्देश्य होता है कि पुराने, अनुभवी और कुशल कलाकार इस कार्यक्रम का सहारा पाकर आराम से जीवन जी सकें, और लोग उनकी कला का लाभ पा सकें; नये उदीयमान कलाकारों को प्रोत्साहन मिले, वे जीवन के पथ पर शीघ्र ही अग्रसर हो जायें, और

भविष्य में अपनी कला-कुशलता से देश को गौरव प्रदान करें ।

इसीलिए ये संघटन कभी चित्रकला या हस्तकला की प्रतियोगिता रखते हैं, तो कभी संगीत या नृत्य की स्पर्धा का आयोजन करते हैं । इन स्पर्धाओं का आयोजन और संचालन जितना मुश्किल है, उससे भी अधिक मुश्किल है इन स्पर्धाओं के विषय की गुणवत्ता और उत्तमता का निर्णय करना । इसलिए समाज के हर कार्यक्षेत्र से एक-एक कुशल और लोकप्रिय व्यक्ति निर्णायक के लिए चुना जाता है । इस निर्णायक-मंडल में डॉक्टर, वकील; नेता, अभिनेता; पत्रकार, कलाकार; व्यापारी, अधिकारी; लेखक और शिक्षक आदि पंच होते ह । ये अपने-अपने मत के अनुसार इन प्रतिस्पर्धियों की कला की गुणवत्ता और उत्तमता का मूल्यांकन करके अंक देते हैं । इन सब निर्णायकों के अंकों का औसत निकालकर, उसी के आधार पर प्रतिस्पर्धी को—प्रथम, द्वितीय और तृतीय-स्थान दिया जाता है । निर्णय की यह पद्धति बहुत ही उत्तम और निष्पक्ष है । इस पद्धति से सभी विषयों की स्पर्धाओं का निर्णय बहुत ही आसानी से हो सकता है; लेकिन नृत्य-स्पर्धा का सच्चा [ठीक] निर्णय करना महा मुश्किल है । इसका कारण यह है कि जिस समय नृत्य स्पर्धा का आयोजन होता है, उस समय उसमें लगभग १५ (पंद्रह) से २० (बीस) प्रतिस्पर्धी भाग लेते हैं। और उसमें भी शास्त्रीय और लोक नृत्य दोनों का समावेश होता है । यह पद्धति योग्य नहीं मानी जा सकती, क्योंकि दो विरोधी ढंगों के नृत्यों की स्पर्धा में [१००%] सौ प्रतिशत न्यायपूर्ण निर्णय लेना सर्वथा अशक्य है । इसलिए शास्त्रीय और लोकनृत्य दोनों शैलियों के नृत्यों की स्पर्धाओं का अलग-अलग आयोजन करना चाहिए । यही नहीं,

शास्त्रीय नृत्यों मणिपुरी, कत्थक, कथकली, तथा भरतनाट्यम में भी किसी एक ही शैली की स्पर्धा होनी चाहिए। जैसे-अगर मणिपुरी नृत्य शैली निश्चित की जाये, तो सारे प्रतिस्पर्धी मणिपुरी नृत्य ही प्रस्तुत करें! इससे निर्णय करते समय, निर्णायक न्यायपूर्ण निर्णय ले सकते हैं।

इसी प्रकार किसी एक प्रान्तीय लोकनृत्य की किसी एक ही शैली की स्पर्धा का आयोजन होना चाहिए; तभी निर्णायक उनकी गुणवत्ता और उत्तमता का ठीक निर्णय कर सकते हैं। ऐसे तो हमारे देश में जितने प्रान्त या प्रदेश हैं, उनसे भी अधिक प्रान्तीय लोक-नृत्य हैं। हर एक प्रान्त में कई अलग-अलग लोकनृत्य हैं। जैसे–

१. मणिपुर – थबल, चोंगबी......
२. त्रिपुरा – रियांग, आदि......
३. आसाम – बीहू नृत्य, हबजनाई (लग्न-नृत्य), लाहो......
४. बंगाल – घमाल, काली - नृत्य, काठी-लाठी नृत्य......
५. बिहार – संथाल, जदुर, छाऊ - नृत्य......
६. उड़ीसा – मुरिया, जदुर, पत्ता-नृत्य......
७. आन्ध्र प्रदेश – लंबाडी, चेंचू, कुम्मी, आदि ...
८. तमिलनाडु – अश्व-आरोही नृत्य आदि......
९. केरल – चुवत्तुकली, कोलकली, वेलाकली......
१०. महाराष्ट्र – कोजरी, कोली, लावणी, आदि......
११. गुजरात – भील लोकनृत्य, रास, गरबा, टिप्पणी......

१२. राजस्थान – घूमर, झूमर, कच्छी घोडी, आदि......

१३. मध्य प्रदेश – झूमर, मरिया आदि......

१४. उत्तर प्रदेश – चामर, कजरी, झूला, नौटंकी......

१५. पंजाब – भांगड़ा, लुड्डी, गिधा......

१६. हिमाचल प्रदेश – डांगी, दीपक, झैंझर......

१७. जम्मू-काश्मीर – धुमाल, राउफ, बचा नग्मा......

इत्यादि प्रदेशों के भिन्न-भिन्न लोकनृत्य ।

अगर सब ढंगों और शैलियों की एक साथ स्पर्धा हो, तो यह एक विचित्र खिचड़ी बन जायेगी । यद्यपि स्पर्धा भी एक प्रकार से खिचड़ी ही है, फिर भी स्पर्धा में एक ही प्रकार की खिचड़ी होनी चाहिए । मूँग की खिचड़ी के साथ, तुवर, मसूर, उड़द आदि की खिचड़ी की तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि स्वाभाविक ही दूसरी जाति की खिचड़ी का स्वाद अलग होता है, और मिर्च-मसाले का परिमाण और मेल भी अलग । यदि स्पर्धा में सिर्फ मूँग की ही खिचड़ी रखी जाये, तो निर्णायक देखकर, सूँघकर, और चखकर आसानी से निर्णय ले सकते हैं, कि खिचडी उत्तम, मध्यम, अधम या साधारण है । उदाहरण के लिए मान लिया जाये कि लोकनृत्यों की एक स्पर्धा में अनेक प्रतिस्पर्धी दल भाग ले रहे हैं । वे अलग-अलग प्रान्त की विशेषता की झलक प्रस्तुत करते हैं, जिसे देखकर दर्शक और निर्णायक दोनों समूह मुग्ध हो जाते हैं, क्यों-कि इनमें कोई भी किसी अन्य से कम सुन्दर और आकर्षक नहीं है । हम जिस नृत्य का प्रदर्शन देखते हैं, वही आकर्षक

और मनमोहक लगता है । एक के बाद एक हर लोकनृत्य सुन्दर और लुभावना प्रतीत होता है । प्रत्येक नृत्य की एक विशेष छाप हमारे दिल पर अंकित हो जाती है । हर नृत्य अपने अपने स्थान पर उत्तम और योग्य है । ऐसी स्थिती में पुरस्कार किसे दिया जाय ? क्या इनमें से किसी को प्रथम, द्वितीय या तुतीय स्थान देना योग्य है ?

अगर पुरस्कार देना ही है, तो सबको विशेष योग्यता का पुरस्कार कोई समान वस्तु, सफलता स्मारिका [ट्रॉफी], प्रमाण पत्र, या पदक देना चाहिए, जिससे सभी को प्रोत्साहन मिले और किसी को हीनता का भाव न पैदा हो । ऐसा करने से ही योग्य न्याय हो सकता है । यह तो मेरा मत और सुझाव है, दूसरे का मत भिन्न भी हो सकता है ।

मेरा अनुभव ऐसा भी है कि कई स्पर्धाओं में फिल्मी रेकॉर्ड पर प्रतिस्पर्धी अपने नृत्य का प्रदर्शन करते हैं । ऐसे कलाकार की अनुचित वेशभूषा, अश्लील अंग-मरोड और नखरे के कारण प्रेक्षक क्षणिक आवेश में आकर तालियाँ बजाते हैं; तो क्या इससे प्रभावित होकर और जोश में आकर, उस कलाकार को पुरस्कार के लिए योग्य पात्र चुनना चाहिए ? इस प्रकार का व्यवहार समाज के लिए एक कलुषित, असंस्कारी तथा कलंकपूर्ण अंग बन जाता है । इस तरह का अभ्यास असामाजिक और अनैतिक उदाहरण हो जाता है, जो सर्वथा अनुचित है । इस प्रकार की स्पर्धाओं के कुछ प्रतिस्पर्धी अपने लोकनृत्य और उसके प्रान्त के नाम भी नहीं जानते, फिर भी वे स्पर्धा में भाग लेते हैं । जब उनसे

पूछने में आता है कि 'आप किस प्रान्त का लोकनृत्य पेश कर रहे हैं, इस लोकनृत्य का क्या नाम है ?' तब बडी ही लापरवाही से जवाब मिलता है—"लोकनृत्य याने लोकनृत्य ! इसमें उसके प्रान्त और नाम से क्या मतलब ?" अब आप ही बताइये कि ऐसे लोगों की स्पर्धा का किस प्रकार क्या निर्णय किया जाय !

नृत्य स्पर्धा के समय प्रत्येक प्रतिस्पर्धी को अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए लगभग ४५० से ५०० रुपयेंतक की रकम खर्च करनी पडती है । यह रकम सुन्दर वेशभूषा, रूपसज्जा, वाद्यकार, गायक और चाय-पानी के लिए खर्च होती है । यह पूरा खर्च कलाकार को ही वहन करना पडता है । इतना खर्च करने पर भी यदि पुरस्कार न मिले, तो भी कोई बात नहीं; लेकिन कुछ सन्तोष तो मिले ! आशा और उत्साह के जोश में खर्च की गई इतनी बडी राशि के बदले, कुछ छोटीसी उत्साहवर्धक, सामान्य वस्तु भी यदि प्रतीक के रूप में प्रदान की जाये, तो कलाकारों को राहत मिलेगी और उनका उत्साह बढेगा । वे यह समझकर संतोष का आनन्द प्राप्त करेंगे कि उनकी मेहनत बेकार नहीं गई, उसकी कद्र हुई । यदि ऐसी सहानुभूतिपूर्ण पद्धति का उपयोग न हो, तो कलाकार निराशावादी बन जाते हैं, और दूसरी बार स्पर्धा में भाग लेने में उत्साह और रुचि नहीं रखते; और प्रति वर्ष प्रतिस्पर्धियों की संख्या में कमी होती रहती हैं । प्रतिस्पर्धियों के कम होते हुए उत्साह को फिरसे गतिशील बनाने के लिए, स्पर्धा-आयोजकों को, कोई दूसरा उपाय ढूँढकर, उसे उपयोग में लाना चाहिए ! हर प्रतिस्पर्धीको प्रोत्साहन-पुरस्कार या विशेष योग्यता-पुरस्कार प्रदान करना चाहिए ! ऐसा करने से प्रतिस्पर्धियों की संख्या में

क्रमशः कमी होने के बदले, शीघ्रता से वृद्धि होने लगेगी। घुड़दौड़ के घोड़ों को मादक, उत्तेजक और प्रेरक खाद्य, द्रव्य तथा पेय दिये जाते हैं। इससे वे स्वस्थ और मस्त होकर, मौज और मस्ती में सदा दौड़ में भाग लेने के लिए उत्सुक और तत्पर रहते हैं; और लगाम खींचने पर भी मुश्किल से रुकते हैं।

आयोजकों के लिए एक और भी कठिन कार्य है, और वह है निर्णायक की पसंदगी, व्यवस्थापक लोग निर्णायक के लिए जिसकी भी नियुक्ति करें, वह खुद शास्त्रीय नृत्य और लोकनृत्य के प्रत्येक ढंग से सुपरिचित हो, योग्य न्याय देने में पूर्ण समर्थ हो और पक्षपात का उस में अंश न हो। नृत्य-स्पर्धा में नृत्य का ज्ञान और न्याय की क्षमता, ये दोनों बातें निर्णायक के प्रमुख और महत्वपूर्ण तथा आवश्यक गुण हैं। निर्णायक का कार्य न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कार्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है, इसलिए निर्णायकों को बहुत सोच-समझकर काम करना चाहिए, नहीं तो निन्दा होती है और यश के बदले अपयश मिलता है।

यहाँ मैं अपने अनुभव का एक उदाहरण पेश करता हूँ। यह उदाहरण रोचक भले ही न हो, पर प्रेरक अवश्य है। मैं अनेक बार नृत्य-स्पर्धाओं में निर्णायक के रूप में कार्य कर चुका हूँ। एक स्पर्धा में मेरे साथ मेरे एक सह निर्णायक भी थे। वे कत्थक के आचार्य थे और कत्थक नृत्य के प्रबल समर्थक। उस स्पर्धा में मेरे निर्णय के अनुसार प्रथम पुरस्कार रास, दूसरा भरतनाट्यम, तीसरा भांगड़ा नृत्य को मिलना चाहिए था, परंतु मेरे सह निर्णायक मित्र ने प्रथम पुरस्कार कत्थक नृत्य को देने के

लिए आग्रह रखा । इसका मूल कारण यही था कि वे खुद कत्थक नृत्याचार्य थे और कत्थक के पक्षपाती । इसके ठीक विपरीत मैंने मणिपुरी नृत्य को अंक ही नहीं दिये थे; क्यों कि वह नाम से ही मणिपुरी नृत्य था, गुण से नहीं । मेरी दृष्टि से तो, जिसका यथार्थ और योग्य प्रदर्शन हो, वही पुरस्कार का सच्चा और प्रामाणिक अधिकारी बन सकता है । अपनी रुचि के कारण किसी के साथ अन्याय किया जाय, यह अन्याय ही नहीं, नैतिक अपराध और धार्मिक पाप है । उपरोक्त योग्य निर्णय के विरोध में मेरे सह निर्णायक मित्र ने अपनी नाराजी प्रकट की, और आखिर उन्हें खुश रखने के लिए, आयोजकों को कत्थक नृत्य के लिए विशेष प्रोत्साहन-पुरस्कार देना पडा । इस तरह मेरे मित्र का अहं तुष्ट हुआ और उन्हें संतोष का अनुभव हुआ । इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, मेरे तटस्थ, किन्तु विद्रोही मन ने निर्णायक के लिए अनेक आमन्त्रणों को नम्रतापूर्वक अस्वीकार किया है । फिर भी जहाँ मुझे लगता है कि आयोजक सचमुच निष्पक्ष निर्णय चाहते हैं, वहाँ जाना और अपनी सेवा अर्पण करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ ।

भारतीय सांस्कृतिक कार्यक्रम

किसी देश या राष्ट्र की सभ्यता को संस्कृति कहते हैं । इसमें उस देश का रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रीती-रिवाज, कला-कौशल और भाषा-साहित्य आदि का सामावेश होता है । हर देश ने अपना इतिहास बनाया है, वर्तमान बनाता है और भविष्य बनाना और सुधारना चाहता है । मनुष्य सामाजिक प्राणी है ।

उसमें अहं की भावना होती है । वह अपने उत्तम गुणोंका प्रदर्शन करके अपने अहम् को संतुष्ट करता है । हर मनुष्य, हर समाज, हर राष्ट्र अपने को दूसरे से अधिक सभ्य, सुसंस्कृत और प्रगतिशील प्रमाणित करना चाहता है । इसीलिए वह मेला, प्रदर्शनी, और सांस्कृतिक कार्यक्रमोंका आयोजन करता है और अपने उत्तम गुणोंका प्रदर्शन करके श्रेष्ठता की प्रथम पंक्ति में सुशोभित होकर अपनी श्रेष्ठता साबित करना चाहता है ।

अपनी सभ्यता और संस्कृति का प्रचार और प्रसार करने के लिए, एक देश दूसरे देश में अपना प्रतिनिधि मंडल भेजता है । यह प्रतिनिधि मंडल अपने देश की कला और संस्कृति का प्रदर्शन करता है । यह प्रदर्शन कला-कौशल्य या नृत्य-संगीत का हो सकता है । इस प्रदर्शन में अपने देश की विशेषताओं की झलक होती है । हम केवल अपने गुणों का प्रदर्शन ही नहीं करते, बल्कि दूसरों के गुणों के दर्शन भी करते हैं । हम उन्हें देखते हैं, समझते हैं सीखते हैं और अपने देश में उसका प्रदर्शन करते हैं; ताकि हम अपने आपको और सुधार सकें, और सँवार सकें, और उत्तम बना सकें, और सभ्य कहला सकें ! इस कार्य को सांस्कृतिक आदान-प्रदान कहते हैं । इससे हम अपनी बात समझाते हैं, दूसरे की बात समझते हैं और अपनाते हैं । इस तरह हम आपस में सद्भावना फैलाते और मित्रता बढाते हैं । सांस्कृतिक आदान-प्रदान का यही उद्देश होता है, और यही होना भी चाहिए ।

इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान को 'सांस्कृतिक सद्भावना यात्रा' कहते हैं । ऐसी सांस्कृतिक सद्भावना यात्रा के लिए एक दल बनाया

जाता है, जिसमें चुने हुए प्रवीण कलाकार होते हैं। ऐसी सांस्कृतिक सद्भावना यात्रा का आयोजन, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ करती हैं, या स्वयं सरकार इसका आयोजन और प्रेषण करती हैं। जहाँ तक सरकार का सवाल है, वह किसी जाने-पहचाने प्रसिद्ध कलाकार को यह काम सौंप देती है, और वह जल्दी ही एक दल तैयार कर लेता है। वह अपने दल के बल पर विदेश यात्रा के लिए चल पड़ता है। चलने से पहले, पत्रकारों से वार्ता होती है, फोटो लिए जाते हैं, अखबारों में समाचार छपता है, कि अमुक प्रसिद्ध कलाकार अपने दल के साथ, सांस्कृतिक सद्-भावना विनिमय के उद्देश से विदेश-भ्रमण के लिए जा रहा है।

ऐसी ही एक सांस्कृतिक सद्भावना यात्रा पर मैं भी कुछ वर्षों पहले विदेश गया था। हमारे दल में अपनी-अपनी कला में कुशल कलाकार शामिल थे। हमारा दल सरकार की ओर से भेजा गया था। यह दल भारत का प्रतिनिधि मंडल था। यद्यपि हमें वहाँ पर्याप्त सफलता मिली, हमारा कार्यक्रम काफी सराहा गया; परन्तु मेरे मतसे हमें वैसी सफलता नहीं मिली, जैसी मिलनी चाहिए; हमारा कार्यक्रम उतना उत्तम नहीं हुआ, जितना होना चाहिए। फिर भी हमारी प्रशंसा हुई-यह उनकी सद्भावना थी।

भारत सरकार और सांस्कृतिक संस्थाओं से मेरा यह नम्र निवेदन है कि वे जब भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रदर्शन के लिए कलाकारों को विदेश-भ्रमण के लिए भेजें, तो बहुत सोच-विचार कर, जाँच-पड़ताल कर और देख-भाल कर भेजें अन्यथा वे हमारे देश की सभ्यता, संस्कृति और कला का गलत चित्र पेश करेंगे और विदेशियों

के मन में हमारे बारे में गलतधारणा बनेगी। इसलिए कलाकारों को चुनने से पहले, उन्हें जाँच-पड़ताल करके यह जानकारी हासिल कर लेनी चाहिए कि उन कलाकारों को भारतीय इतिहास, संस्कृति, सभ्यता और दर्शन का सामान्य ज्ञान है या नहीं क्योंकि प्रत्येक कलाकार में इन बातों का ज्ञान होना अनिवार्य है। जो कार्यक्रम कलाकार विदेश में प्रस्तुत करने जा रहे हैं, अपने देश में उसका प्रदर्शन और परीक्षण करके देख लेना चाहिए कि उसमें शुद्ध मनोरंजन और भारतीय दर्शन है या नहीं ! अगर नहीं है तो होना चाहिए। और भेजने से पहले उसमें उचित परिवर्तन करा लेना चाहिए। इससे कार्यक्रम परिष्कृत होकर उत्कृष्ट बन जाएगा।

अच्छे कलाकारों द्वारा उत्तम कार्यक्रम और शिष्ट व्यवहार का प्रदर्शन करने से विदेशियों पर हमारी अच्छी छाप पड़ेगी। उनको भारतीय सभ्यता, संस्कृति, कला और दर्शन का समुचित परिचय प्राप्त होगा और हमारे देश की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। मेरे अनुभवों के अनुसार मेरा यह मत है कि विदेशों में हम उत्तम कार्यक्रम और अच्छा आचरण प्रस्तुत नहीं करते। इसलिए प्रस्तावित सुझावों पर विशेष ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक और लाभकारी सिद्ध होगा।

१. जिन कलाकारों का चुनाव किया जाये, उनके खास विषय की शिक्षा ज्ञान और योग्यता; भारतीय इतिहास, सभ्यता, संस्कृति और दर्शन का सामान्य ज्ञान; उनके चरित्र और अनुशासन का इतिहास, आदि बातों की जाँच कर ली जाये।

२. जिन व्यक्तियों को इन कलाकारों को चुनने के लिए नियुक्त किया जाये, वे खुद उपरोक्त बातों के जानकार हों, और निष्पक्ष

चुनाव के लिए प्रसिद्ध हों ।

(क्योंकि निष्पक्ष व्यक्ति ही श्रेष्टतम कलाकारों की पसन्दगी कर सकता है । पक्षपात, भाई-भतीजावाद और स्वार्थ तथा कूटनीतिक दबाव के कारण किसी भी व्यक्ति के लिए सर्वोत्तम चुनाव करना बड़ा कठिन कार्य हो जाता है ।)

३. विदेशों में सर्वोत्तम कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए, कम से कम दस-बारह नर्तक कलाकारों की, और इतनी ही गायक तथा वादक कलाकारों की संख्या होनी चाहिए । इससे न मंच खाली-खाली दीखेगा और न संगीत सूना-सूना प्रतीत होगा । नृत्य के समय मंच भरा हुआ और संगीत गूँजता हुआ, अधिक सुहावना और प्रभावकारी लगता है ।

४. जिस व्यक्ति को ऐसे सांस्कृतिक दल का नेता चुना जाये वह अनुशासन प्रिय, शांत, गंभीर, नीतिकुशल और निष्पक्ष हो ! उसका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली और व्यवहार विवेक पूर्ण हो ! वह अपने दल को अपना परिवार समझे ! उनके साथ किसी प्रकार का पक्षपात या नीच-ऊँच भेद-भाव न करे ! इससे सभी कलाकार प्रसन्न होकर, हिल - मिलकर काम करेंगे, अपना पूर्ण सहयोग देंगे और अपनी तरफ से अपनी कला का खुलकर सुन्दर प्रदर्शन करेंगे ।

यदि दल के नेता या संचालक का व्यवहार अच्छा न होगा, उसके मन में अभिमान, स्वार्थ, निरंकुशता और कलाकारों के प्रति पक्षपात और भेदभाव होगा, तो वे नाराज और निराश हो जायेंगे और दिल से अच्छा और सहयोगपूर्ण कार्यक्रम नही देंगे । क्योंकि

कलाकारों के मन में भी सरलता के बदले कुटिलता, प्रसन्नता के बदले खिन्नता और उदासीनता के भाव उत्पन्न हो जाते हैं, जिसके कारण काम अरुचिकर हो जाता है। फिर कलाकार काम दिल से नहीं, दबाव से करते हैं। जो काम प्रेम और मित्रता से लिया जा सकता है, वह अभिमान और अधिकार के दबाव से कदापि सम्भव नहीं।

यदि उत्तम कार्यक्रम का प्रदर्शन करना है, और सफलता प्राप्त करने की कामना है, तो कलाकारों को सदा प्रसन्न रखो उनके दिल को जीत लो। वे दिल से काम करके सफलता को तुम्हारे कदमों में ला देंगे, और सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी। इसके लिए इन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

१ — सभी कलाकारों को प्यार और सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिए।

२ — किसी भी प्रकार की मेजबानी या आदरसत्कार का निमंत्रण आया हो, या किसी समारम्भ में शामिल होना हो, तो सभी कलाकारों को वहाँ पर ले जाना चाहिए।

३ — परिचय कराते समय प्रत्येक कलाकार के विशेष गुणों की चर्चा करते हुए, सुन्दर ढंग से, आदर पूर्वक उसका परिचय देना चाहिए।

४ — जिस कलाकार को जो काम सौंपा गया हो, उसके लिए उसे श्रेय देना चाहिए। श्रेय की सूची में उसके विषय के साथ उसका नाम छपना चाहिए।

५ — कलाकारों को अनुशासन का पालन करना चाहिए और

अपने नेता की आज्ञा का सम्मान करना चाहिए ।

६ – कलाकारों का आहार-व्यवहार भारतीय होना चाहिए ।

७ – कलाकार जो भी कार्यक्रम पेश करें, वह सम्पूर्ण शुद्ध भारतीय होना चाहिए ।

हम जो भी कार्यक्रम प्रस्तुत करें, वह भारतीय संस्कृति से भिन्न नहीं होना चाहिए । हमें ऐसा कदापि नहीं सोचना चाहिए कि 'हमारी संस्कृति के सम्बन्ध में ये विदेशी लोग क्या जानते होंगे । हम जो भी कार्यक्रम प्रस्तुत करेंगे, प्रेक्षक बड़े आनन्द से तालियाँ बजाकर हमें दाद देंगे ।' परन्तु यह सोचना गलत है । इन विदेशियोंको हमारी भारतीय संस्कृति का जितना ज्ञान होता है, उतना तो हमें भी नहीं होता । वे तो भद्रता के कारण तालियाँ बजाकर हमारा सम्मान करते हैं और प्रोत्साहन देते हैं ।

मेरे कलाकार जीवन के ३८ (अड़तीस) वर्षों में जो कठिनाइयाँ आईं, उनका हिम्मत से डटकर, किस प्रकार मैंने सामना किया; नृत्य-रचना और दिग्दर्शन में जो समस्याएँ उपस्थित हुईं, उनको किस तरह धीरज से हल किया; अनेक कठिन कार्यक्रमों के टेढे प्रस्ताव प्रश्न चिन्ह बनकर मेरे सामने खडे हुए, हर ललकार को मैंने सहर्ष स्वीकार किया और समयके अन्दर ही, शान्ति से उनका समाधान करते हुए, प्रश्न चिन्ह को सीधा करके पूर्ण विराम में बदल दिया । इन बातों और घटनाओं के विशेष चित्र, विनम्र सलाह और सुझाव के रूपमें, अपने सामान्य और विशेष कलाकार मित्रों के सामने मैंने प्रस्तुत किये । मेरे जीवन-अल्बम (चित्र-पोथी)

के इन चित्रों की झलक देखकर, मेरे मित्रों को अपने जीवन में मेरे सुझाव यदि उपयोगी और लाभकारी सिद्ध हो सकें, तो मैं अपने प्रयत्न को सार्थक और अपने जीवन को धन्य समझूँगा ।

कलाकार की जीवन गाथा

भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा पर स्थित मणिपुर नामका एक राज्य है । इस राज्य के पडोस में, आसाम, नागालैंड, मेघालय और ब्रह्मदेश बसे हुए हैं । मणिपुर राज्य चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ है, जिसके कारण आज तक इस राज्य में रेलमार्ग का निर्माण और व्यवहार नहीं हो सका है । प्रकृतिने मणिपुर की भूमिपर बडी सहृदयता से चारों ओर अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया है । पर्वत, झरने, नदी, तालाब, वन्य वृक्षावली और हरियाली का मानो कोई निराला काव्य रच दिया है ऐसा लगता है । कि किसी कुशल चित्रकार ने बडी खूबी से सारे रंगों का उपयोग किया है और अपनी कुशल कला का परिचय दिया है । उसने मणिपूर का ऐसा अनुपम चित्र बनाया है, जो दर्शनीय और प्रशंसनीय है । मणिपूर राज्य, अपने विशेष मणिपुरी नृत्य तथा महाभारत में निरूपित अर्जुन और चित्रांगदा की कथा, के कारण ख्याति-प्राप्त है । इसने देश-विदेश में अपना विशेष स्थान बना लिया है ।

भूतकाल में आस-पास के देशों के बलवान और दम्भी नरेश, भूमि, स्वर्ण और सुन्दरी के लिए, जब मणिपुर जैसे छोटे-छोटे राज्यों पर आक्रमण करते; तब कला और शांतिप्रिय, सीधे-सादे मणिपुरी लोग आस-पास के प्रदेशों में चले जाते और वहाँ के

शहरों में बस जाते थे । ऐसे ही संयोग में, एक समय तनासिंह नामक एक व्यक्ति मणिपुर से निकलकर, कछार जिले के सिलचर शहर के समीप, सिंगारी नामक गाँव में बस गये । श्री तनासिंह तलवार चलाने में और मृदंग बजाने में कुशल थे । आयुर्वेदिक औषधियों में उनकी विशेष रुचि थी और इस कला में भी वे कुशल विशेषज्ञ थे । जब कभी गाँव में महामारी का प्रकोप होता, हैजा (विषूचिका) जैसी भयंकर छूत की बिमारी फैल जाती, प्रतिदिन दो-चार व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती, गाँव में चारों तरफ हा-हाकार मच जाता, लोग भय और शोक के कारण घर से बाहर भी नहीं निकलते थे । ऐसे आपात संकट काल में, अपनी जान की परवाह किए बिना, संकट का सामना करने के लिए, भयभीत और पीडित लोगों को आश्वासन और राहत देने के लिए, श्री तनासिंह रात के दो-दो बजे तक, घर-घर घूम कर औषध देते थे । जो संकट के समय सहायता करता है, वही लोगों का प्रिय बन जाता है । इस प्रकार श्री तनासिंह वहाँ अत्यन्त लोकप्रिय हो गये और लोगों के अन्तःकरण में बस गये । अपने उपकारी के उपकार का बदला चुकाने के लिए स्थानिय लोगों ने उन्हें पुरस्कार के रूप में कन्या-दान दिया । स्थानिय कन्या से उनका विवाह हुआ और वे आनन्द और सुख से रहने लगे । कालान्तर में प्रकृति ने उन्हें उपहार में दो पुत्र-रत्न और दो पुत्री-मुक्ता प्रदान किये । सबसे बड़े पुत्र का नाम था लैखमसेना सिंह ।

श्री लैखमसेना सिंह बचपन से ही होनहार थे । उन्हें कला, भाषा और साहित्य के प्रति विशेष आकर्षण और अभिरुचि थी । जिस प्रकार मेंहदी यदि हाथ में लगती है, तो धीरे-धीरे उसका रंग चढ़ता जाता है और कुछ ही समय में यह रंग काफी गहरा

और पक्का हो जाता है; उसी प्रकार कला और साहित्य की रुचि ने श्री लैखमसेना सिंह के जीवन में अपना रंग जमा लिया । वे अपनी भाषा मणिपुरी और बंगाली के अतिरिक्त संस्कृत भाषा के भी अच्छे जानकार थे । उन्होने अपनी प्रतिभा और प्रयत्न के बल पर अनेक कलाओं को हस्तगत कर लिया और कालान्तर में अनेक हृदय-स्पर्शी नाटकों और मधुर गीतों को जन्म दिया। उनकी सुन्दर और स्वाभाविक रचनायें आज भी गाँव के लोगोंकी जिह्वा पर अटखेलियाँ करती रहती हैं । कला के प्रति प्रेम ने उन्हें कलामय बना दिया। वे चित्रकला और हस्तकला के प्रति भी आकृष्ट हुए और अपनी कलासाधना के प्रभाव से अच्छे शिल्पकार बन गये । वे पत्थर और अधिकतर लकड़े पर सुन्दर आकार और आकृति खोदते और अपनी चित्रकारी, शिल्पकारी ओर सजावट से कमरे की शोभा बढाते । आज भी वहाँ के गाँव के मंदिरों और कलाप्रेमियों के घरों में मनोहर मूर्तियाँ और आकर्षक आकार तथा कलात्मक कृतियाँ श्री लैखमसेना सिंह की शिल्पकला की याद दिलाती हैं। इन्हें भी आयुर्वेदिक दवाओं का ज्ञान पिता की तरह ही विरासत में मिला था । अपने इसी ज्ञान के आधार पर वे गाँव के लोगों की सेवा करके स्वयं खुश रहते थे । उन्हें जादू के खेलों में भी रुचि थी और वे अपने जादू के खेलों से प्रायः लोगों का मनोरंजन करते थे ।

श्री लैखमसेना सिंह की धर्म पत्नी श्रीमती इन्दुबाला देवी भी सद्गुणी महिला थीं । उन्हें मणिपुरी नृत्य का अच्छा ज्ञान था । मणिपुरी जनता धर्म से वैष्णव है । लोग भगवान श्रीकृष्ण और भगवती राधा के भक्त और पुजारी हैं । यहाँ पर उत्सवों के समय

सामूहिक नृत्य में पुरुष और स्त्री दोनों भाग लेते हैं । पुरुष मृदंग बजाते हुए और स्त्रियाँ गाती हुई नाचती हैं । इसलिए यहाँ पर स्त्रियों को नृत्य का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। सामान्यतया यहाँ पर कन्याएँ घरके काम-काज के अलावा नृत्य कला और हथ कड़घे पर कताई और बुनाई अवश्य सीखती हैं । इससे उनके गुणोंमें चार चाँद लग जाते हैं । शादी-ब्याह में ये गुण देखे जाते हैं और सहायक सिद्ध होते हैं । इसलिए कन्याएँ इन गुणों में प्रवीण होना, गौरव की बात समझती हैं । श्री लैखमसेना सिंह को श्रीमती इन्दु-बाला देवी से सात संतानें छः पुत्र और एक पुत्री प्राप्त हुई। इस सम्पन्न परिवार के बच्चों का लालन-पालन बड़े आराम से होता था । कला प्रेमी पिता अपने बच्चों को भी बचपन से ही नाटक, नृत्य और संगीत की शिक्षा देते थे ।

जिस प्रान्त में वे रहते थे, वहाँ का नैसर्गिक सौन्दर्य अनुपम था । स्वास्थ्यप्रद पर्वतीय स्थान, फल – फूलों से सुशोभित वृक्षों से झूमता हुआ, सुरभित और सुहावना वातावरण और एक से एक बढ़कर, अनेक अपूर्व तथा नयनाभिराम दृश्य । जिधर मुँह घुमायें, मधुर सुगंध; जिधर आँखें जायें, विविध रूप – रंग । जिधर सिर उठायें उधर ही हरियाली; जिधर घूम जायें, शोभा निराली ।

इस प्रदेश की सुन्दरता से प्रभावित हो कर श्री जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा भी था कि 'यह भारत का दूसरा काश्मीर है ।' न केवल पृथ्वी के मनुष्य इसकी अनुपम सुन्दरता से प्रभावित हो जाते हैं, बल्कि आकाश के मेघ भी मुग्ध होकर आकर्षित हो

जाते हैं। वे सुदूर दक्षिण में हिन्द महासागर तथा बंगाल की खाडी से जल लाते हैं और अपने प्रिय प्रदेश पर उसी प्रकार जल चढ़ाते हैं, जिस प्रकार सावन के महिने में, भक्त - जन दूर - दूरसे जल लाकर अपने इष्टदेव भगवान शंकर पर जल चढ़ाकर उनका अभिषेक करते हैं। उनकी श्रद्धा के जल से शिवालयका भीतरी भाग सावन भर गीला ही रहता है। मुग्ध मेघ भी आवेश में आकर इतना जल चढाते है कि यहाँ का पूरा प्रदेश जलमय हो जाता है। जलकी इतनी वर्षा होती है कि हर वर्ष यहाँ बाढ़ आ जाती है। आज राहत–कार्य भी खूब बढ़ गया है। देश के किसी भी कोने में आफत आये, उसका सामना करने के लिए दूसरे प्रदेशों के लोग खडे हो जाते हैं। वे अन्न, वस्त्र और धन इकठा करके बाढ़ ग्रस्त प्रदेश में भेज देते हैं। ये राहतकी वस्तुयें हवाई-जहाज और हेलिकॉप्टर द्वारा शीघ्र पहुँचाई जाती हैं, और बाढ़ग्रस्त और जल से त्रस्त लोग जल्दी ही आश्वस्त हो जाते हैं। परन्तु वह समय कुछ और था उस समय ऐसा कुछ भी नहीं था। जब हरे-भरे लहलहाते खेत बाढ़ के जल में डूब जाते, तो सीधे-सादे और गरीब स्वभाव के लोग बाढ़ की भयंकरता से घबरा जाते और उदरपूर्ति की चिन्ता में डूब जाते थे। ऐसे आपत्ति के समय में श्री लैखमसेना सिंह भी चिन्ता में डूब जाते और विचारों की बाढ में गोता लगाकर कुछ उपाय ढूँढ लाते थे उन्होंने कुछ पढे-लिखे लोगों की एक समिति बनाई और आग लगने के पहले ही कुआँ खोदने का निश्चय किया। उन्होंने लोगों को सुझाव दिया और उनकी योजना लोगों को पसंद आ गई। इस योजना के अनुसार रोज हर घर से एक मुट्ठी अनाज इकठा

करती थी। लोग एक मुट्ठी दाल या चावल देने में जरा भी हिचक (संकोच) महसूस नहीं करते थे। रोज के खाने में से एक मुट्ठी अनाज बचाना उन के लिए बहुत ही सरल और स्वाभाविक बात हो गई। जब काफी अन्नराशि इकट्ठी हो जाती, तो उसे बेचकर धनराशि में बदल दिया जाता और वह धन बैंक में जमा कर दिया जाता, ताकि बाढ के समय उसका उपयोग किया जा सके। धन कम पड़ जाने पर कभी-कभी तो श्री लैखमसेना सिंह अपनी खुद की गाय-भैंस को भी बेचकर लोगों की सेवा करते थे। वे न केवल लोगों का जीवन बचाकर उनकी सेवा करते थे, बल्कि मृत्यु को भी सार्थक बना कर उसके सगे-सम्बधियों को मानसिक राहत पहुँचाते थे। यदि किसी निर्धन आदमी की मृत्यु (निधन) हो जाती, तो उसके कफन और क्रिया-कर्म का बन्दोबस्त कर देते और विधिपूर्वक क्रिया-कर्म सम्पन्न होने से मृत व्यक्ति के सगे-सम्बन्धियों को बहुत ही मानसिक शान्ति और आर्थिक राहत मिलती। इस प्रकार लोगों को सहयोग और सहायता देकर श्री लैखमसेना सिंह स्वयं प्रसन्न होते थे।

यद्यपि वे धार्मिक क्रिया-कर्म और कर्म-कांड को मानते थे, फिर अतिशय कर्म-कांड के बढते हुए पाखंड को प्रोत्साहन देना उचित नहीं समझते थे। धार्मिक कर्म-कांड के आडम्बर को वे बढ़ने नहीं देना चाहते थे। कर्म-काण्ड के आडम्बर के बढते हुए 'सुरसा' रूपको वे हनुमान की तरह दबाकर कम और छोटा कर देना चाहते थे। वे कर्म-काण्ड को असली, छोटे और शुद्ध रूप में ही रखना चाहते थे, ताकि धार्मिक प्रजा को यह आडम्बर रूपी

'सुरसा' निगल न जाये ।

वे धार्मिक और सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध थे और किसी प्रकार उन्हें समाप्त करना चाहते थे। ताकि सीधी-सादी गरीब प्रजा सुख और शान्ति से जीवन जी सके । अशिक्षित और अल्पशिक्षित जनता प्राय: धर्मभीरू और समाज भीरू होती है और अक्सर चालाक, धार्मिक और ढोंगी लोगों से प्रभावित होकर उनके चक्कर में आ जाती है । और वे बड़ी बेरहमी से उनका शोषण करते और आराम से अपना पेट भरते हैं । धर्म के मर्म को अच्छी तरह समझने के लिए श्री लखमसेना सिंह जिन विद्वानों से संस्कृत सीखते थे, उन्हीं को तर्क–वितर्क करके प्रभावित करते और उन्हें समझा–बुझाकर समाज में फैले हुए अन्ध–विश्वास और कुप्रथाओंको दूर कर देने की प्रेरणा देते थे । वे अपने इस प्रयास में पर्याप्त सफल हुए और इससे गरीब प्रजा को काफी राहत मिली । इस प्रकार समाज में सुधार करके और उसे कुप्रथाओ और अन्ध विश्वासों के भयंकर भूतों के प्रभाव से (बाहर निकाल कर) मुक्त कराकर और उसे सुखी बनाकर स्वयं सुख और संतोष का अनुभव करते थे । यद्यपि उन्हों ने अपने समाज के लिए काफी कार्य और सुधार किया फिर भी सामाजिक कार्यकर्ता और सुधारक होने का कभी भी दावा नहीं किया । वे तो समाज का विनम्र सेवक ही रहना पसन्द करते थे ।

धार्मिक प्रजा के इतने सुन्दर गाँव में मंदिर तो था, जहाँ पर लोग अपने आराध्य देव के दर्शन करते और अपनी श्रद्धा के फूल और अपनी भावना के नैवेद्य चढाते थे । पर कोई बड़ा मंडप न

था, जहाँ बैठ कर वे भगवान का भजन - कीर्तन और विद्वानों के व्याख्यान आरामसे सुन सकते। जनता की इस भावना को जानकर श्री लेखमसेना सिंह ने अपने घर के टिन के पतरों से तुरंत एक मंडप बनवा दिया और अपने लिए घास-फूस का घर बनाया, जहाँ उनका परिवार संतोष से रहने लगा। उन्होंने फिर मंदिर के लिए चंदा इकठा करने की योजना बनाई और थोडे ही समय में मंदिर को पुनः निर्माण का कार्य भी आरम्भ हो गया। इस प्रकार गाँव में ही तीर्थ ला दिया। ऐसा था उनका लोगों के प्रति स्नेह-भाव, अजोड प्रेम, अमित सहानुभूति !

सब के दिन सदा समान नहीं होते। समय का चक्र चलता ही रहता है। कभी दिन कभी रात, कभी सुख कभी दुःख, कभी अमीरी कभी गरीबी, मनुष्य के जीवन में आते ही रहते हैं। यही विधाता का विधान है, प्रकृति का नियम है। दुर्भाग्य से इस सुखी परिवार पर भी संकट आ गया। अचानक श्री लैखमसेना सिंह को आंत्रशोथ [Appendicilis] की बीमारी ने पकड लिया। बीमारी से गरीबी आती है, आमदनी कम और खर्च अधिक। आय और व्यय का संतुलन बिगड़ गया। जब मशीन में कहीं खराबी आ जाती है, कोई पुर्जा खराब हो जाता है, तो सारी मशीन बिगड़ जाती है, सारा काम ठप्प हो जाता है। यही हाल इस परिवार का हुआ। आधि व्याधि और उपाधि ने इसे घेर लिया। इनकी किराने की एक दूकान थी शायद ठीक देखरेख न होने के कारण, उसमें भी घाटा होने लगा।

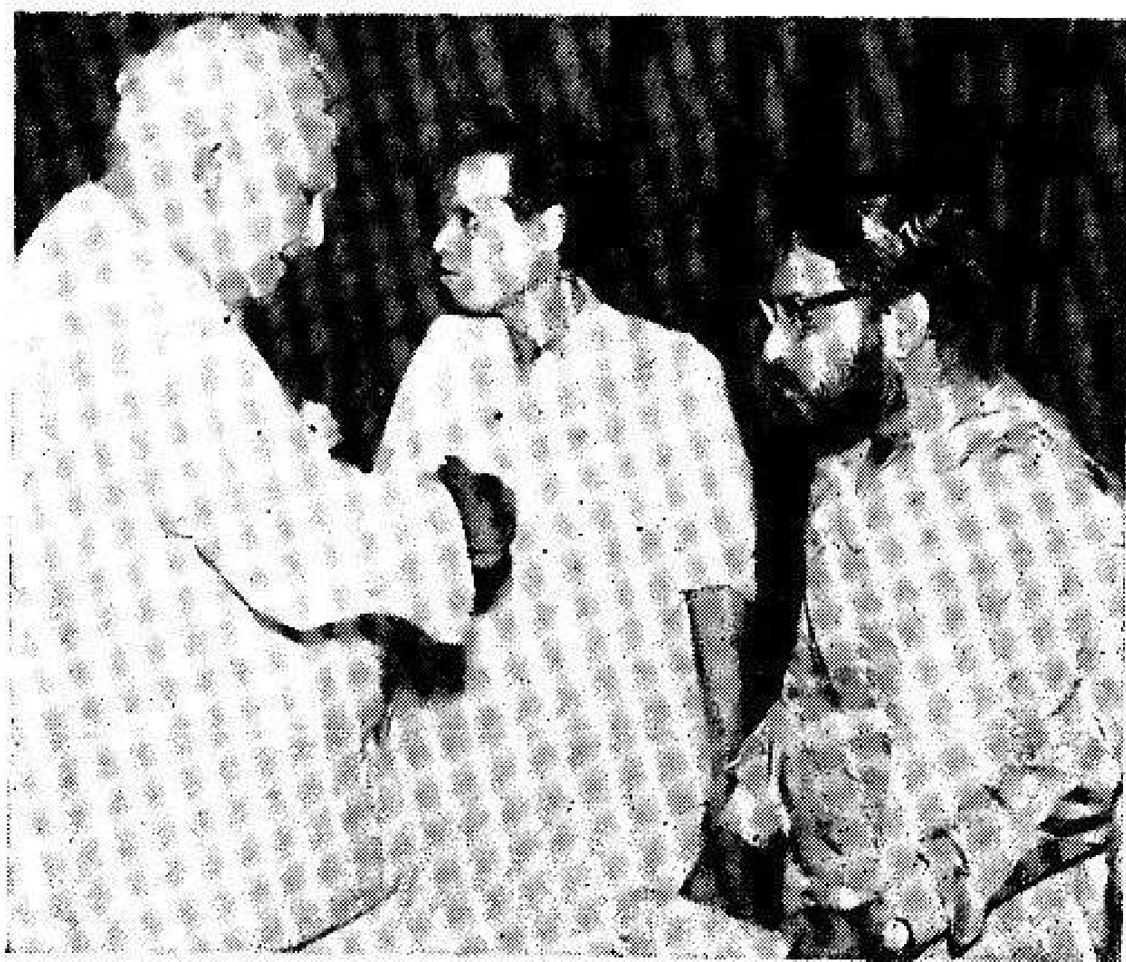
परिवार को इस संकट से बचाने के लिए और घरका खर्च

चलाने के लिए, श्री लैखमसेना सिंह के जेष्ठ पुत्र श्री विपिन सिंह ने स्वयं परिश्रम करके कुछ कमाने का विचार किया। इसी विचार से वे समीप के सबसे सम्पन्न नगर कलकत्ता के लिए चल पड़े। यहाँ उन्होंने अपने पिता और गुरुजनों से प्राप्त नृत्य और संगीत कला का उपयोग किया। वे यहाँ के कला प्रेमी और समपन्न परिवारों में नृत्य की शिक्षा देने लगे। परिवार के सभ्यों को सहारा और सहयोग देने के लिए ही उन्होंने यह मार्ग अपनाया, जो बाद में आगे चलकर उनका पेशा बन गया और वे एक प्रसिद्ध नृत्य शिक्षक के रूप में विख्यात हो गये है।

दूसरी ओर श्री विपिनसिंह के कलकत्ता चले जाने के बाद घर और दूकान की सारी जिम्मेदारी दूसरे पुत्र श्री सुरेन्द्र सिंह पर आ पडी। उन्हों ने भी बडे साहस के साथ अपने कन्धों पर उठा लिया भावनाके जोशमें आकर झटक से भार उठा लेना आसान है, लेकिन उसे सहन और वहन करना बडा कठिन कार्य है। इसमें हडडी चटक जाती है, चमड़ी फट जाती है, शरीर थक जाता है, माथा घूमने लगता है, चक्कर आ जाता है, अंधेरा छा जाता है। लेकिन उन्होंने बड़ी सूझ – बूझ और दीर्घदृष्टि से काम करना शुरू किया और प्रतिकूल संयोगों को अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। किसी धन्धे में घाटा क्यों और कब आने लगता है? जब उसमें घुन लग जाते है और उसे अन्दर ही अन्दर खाकर खोखला बना देते है। निजी और व्यक्तिगत देख–भाल न होने से ढोल में पोल हो गयी थी। यदि डब्बे में छेद हो जाये, तो तेल बह जायेगा लाभ के बदले नुकसान हो जायेगा। इसी विचार से श्री सुरेन्द्र सिंह ने खरीदी

का काम स्वयं अपने हाथोंमें ले लिया। वे खुद शहर जाते, सामान खरीदते और गाँव को लाते थे। यदि मजदूर अधिक पैसे माँगता, तो स्वयं सामान अपने सिर पर उठा लेते थे। यह काम सरल तो नहीं था, लेकिन साहस से किसी तरह हो जाता था।

एक बार दूकान में नमक समाप्त हो गया। दूकान में नमक नहीं, तो दूकान की इज्जत नहीं। नमक नहीं, तो गाँव वालों के खाने का मजा किरकिरा। अपनी दूकान की प्रतिष्ठा रखने और गाँव वालों को नमक की पूर्ति करने (नमक देने) के लिए श्री सुरेन्द्र सिंह स्वयं नमक लेने के लिए शहर चले गये। नमक की कीमत कम और वजन ज्यादा; ज्यादा वजन, तो मजदूरी ज्यादा। ज्यादा मज़दूरी देने से फायदा क्या? तंगी की हालत में पैसा-पैसा बचाना चाहिए, तभी दुकान चल सकती है तभी घर चल सकता है। यह सोचकर उन्होंने स्वयं नमक का बोरा (थैला) अपने सिर पर उठा लिया और गाँव की ओर चल पड़े। यह बरसात का मौसम था और बाढ का समय। इधर-उधर, जहाँ-तहाँ पानी भरा हुआ था, हर गड्ढा तलाब बना हुआ था। सँभल-सँभल कर चल रहे थे, फिर भी अचानक पैर फिसल गया और वे धड़ाम से गिर गये एक छोटे तालाब के छिछले पानी में। अंग भीग गया इसकी परवाह न थी, पर नमक भीग गया उसका दुःख था। झट से उठे और झड़प से उठा लिया नमक का बोरा फिर से सिर पर। भीगे नमक का अब मजा आने लगा। नमक का रस टपकने लगा भार हल्का हो गया, दुःख हल्का नहीं हुआ, आँखें जलने लगीं, मुँह खारा हो गया। फिर भी बडा उत्साह था मन में कि इतनी विपरीत परिस्थितियों में भी किसी तरह नमक लेकर ही आए। जब



बम्बई की सुप्रसिद्ध संस्था 'फेलोशिप' के प्राण एवं नियामक श्री अंबालाल ए. ईनामदार नृत्याचार्य श्री सुरेन्द्र सिंह और संगीताचार्य श्री चत्रभुज राठोड़ को अभिनन्दन देते हुए।

नाव में कहीं छेद हो जाये, तो वह ज्यादा समय तक नहीं चल सकती, जल्दी ही डूब जाती है । लाख प्रयत्न और अथक परिश्रम करके भी श्री सुरेन्द्र सिंह इस डूबती हुई नाव को नहीं बचा सके । वह नाव जो पूरे परिवार का भार वहन करती थी, आखिर एक दिन डूब गई । दूकान बन्द हो गई ।

अब तक श्री सुरेन्द्र सिंह मेहनत करते थे, अब उन्होंने संघर्ष करने का निश्चय किया । वे गाँव से दूध लेकर शहर में बेचने जाते और शहर से पान, सोपारी और तम्बाकू लाते और गाँव में बेचते; फिर दूध के साथ ही शाक-भाजी का धन्धा भी बढ़ा दिया । इस आमदनी से भी घर का खर्च पूरा न पड़ता और इस काम में आमदनी कम और मेहनत ज्यादा थी । फिर उन्होंने बीडी बनाने और बेचने का काम शुरू कर दिया । वे दूर-दूर तक घूमते, हारमोनियम पर गा-गाकर प्रचार करते, और बीड़ी बेचते थे । यह काम भी आसान तो नहीं था, लेकिन मेहनत की रोटी मीठी लगती है । इसी बीच उन्हें किसी किराने की दुकानवाले ने देख लिया । उसने उन्हें अपने लिए काम करने का प्रस्ताव किया । वहाँ से बारह (१२) मील दूर नरसिंह पुर के बाबुर गाँव में हर हफ्ते बाजार लगता था । वहाँ जाकर उन्हें उसका सामान बेचना था । दूकान तो वे पहले चलाते ही थे, काम आता ही था, प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया । उन्हें साईकल पर जाना-आना था । वे बाजार के दिन, बड़े सबेरे, अंधेरे में ही निकल जाते और शाम को बाजार बन्द होने पर अंधेरे में ही घर वापस लौटते थे । यद्यपि काम बड़ा सीधा और सरल था, पर मार्ग बहुत टेढा और कठिन था । बारह (१२)

मील का कच्चा रास्ता बहुत ही ऊबड़-खाबड़ था; उस पर अंधेरे में साइकल चलाना खूब कठिन था । साइकल बार-बार चलते-चलते अचानक खड्डे में चली जाती, जोर का झटका लगता और सारा शरीर हिल जाता, वे गिरते-गिरते बच जाते, ऊँचाई अधिक होने के कारण उनके पैर स्टॅन्ड का काम करते, वे झटसे जमीन पर टिक जाते । इस काम के दौरान, साईकल सवारी [यात्रा] में उन्हें ऐसा अनुभव होता, जैसे वे मरुभूमि [रेगिस्तान] में ऊँट की सवारी कर रहे हैं । सारा शरीर लचक-मचक कर ढीला हो जाता । थके-माँदे घर आकर वे इस तरह सो जाते, जैसे कोई घोड़ा बेचकर सो जाता है । इस प्रकार के काम से अब वे ऊब गये । और इन परेशानियों से तंग हो गये । अब उन्हें किसी और तरह को काम करने की इच्छा हुई, वे किसी और प्रकार के व्यवसाय की खोज करने लगे ।

इसी समय विश्व-युद्ध आरम्भ हो गया । भारत सरकार ने हवाई हमले से लोगों की सुरक्षा के लिए जगह-जगह ए. आर. पी. की स्थापना की । कोई भी नागरिक इस संगठन में शामिल हो सकता था । श्री सुरेन्द्र सिंह इस सरकारी संगठन में भरती हो गए ।

सन १९४२ ईस्वी में कुछ समय के पश्चात श्री सुरेन्द्र सिंह के पिता का स्वास्थ्य गिरने लगा, उनकी हालत खराब होती गयी। उसी समय श्री सुरेन्द्र सिंह को बदली का ज्ञापन मिला । अब तक वे ए. आर. पी. में प्रशिक्षित होकर प्रवीण हो चुके थे; अब दूसरों को प्रशिक्षण देने के लिए उन्हें सिल्चर केन्द्र से हैलाकांदी

के केन्द्र पर भेजा जा रहा था, इसी का आदेश उन्हें मिला था। स्थानान्तर का यह समाचार देने के लिए वे अपने बीमार पिता के पास पहुँचे ।

पिता ने आँखें उठायीं, ऐसी प्यासी दृष्टि से बेटे की तरफ देखा कि बेटे के रोंगटे खड़े हो गए । दोनों एक दूसरे की तरफ असहाय दृष्टि से देखते रहे । अगर पिता में शक्ति होती तो वह बेटे को बाहों में भरकर कंधों पर उठा लेते और यदि बेटे का बस चलता, तो वह बाप को अमृत पिला कर बिस्तर से खड़ा कर देता । फिर बाप ने ही शान्ति भंग की – ऐसी शान्ति, जो तूफान के पहले और तूफान के बाद होती है । उन्होंने धीरे से बेटे से कहा– "बेटा ! बड़ा बेटा विपिन तो अब कलकत्ता से भी आगे, बम्बई के पास पूना की ओर गया हुआ है, और तू भी अगर यहाँ से कहीं और चला जायेगा, तो मेरा क्या होगा ? मेरे जीवन का अन्त बहुत ही निकट है, मेरी मृत्यु के बाद मेरे क्रिया-कर्म की धार्मिक विधि कौन सम्पन्न करेगा ?" फिर थोड़ा सोच-विचार करके उन्होंने कहा– "बेटा, जरा पंचांग तो लाना !" पंचांग देखकर उन्होंने अपना विचार प्रकट किया – "कल पूर्णिमा है; पूर्णिमा का दिन बहुत अच्छा होता है । मैं कल ही इस दुनिया को छोड़कर, दूसरी दुनिया के लिए प्रस्थान करूँगा ।" पुत्र सुरेन्द्र को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ, यद्यपि वे इस तथ्य को जानते थे कि उनके पिता ने अपनी साधना से अनेक सिद्धियाँ अर्जित की हैं । भीष्म को स्वेच्छा-मृत्यु प्राप्त हुई थी, किन्तु वह युग और था और यह जमाना और है । दूसरे दिन श्री

सुरेन्द्र सिंह को अपने कर्तव्य [काम] पर उपस्थित होना ही था, इसलिए वे भोजन से पहले, नहाने-धोने के लिए तालाब पर गये, इतने में पिता ने इस संसार से विदा लेने की तैयारी दिखाई। तुरन्त सुरेन्द्र की माता ने पति से रोते हुए कहा– "यह क्या करते हो जी ! अभी तो क्रिया-कर्म करनेवाले लड़केने भोजन भी नहीं किया है। अभी आता ही होगा, उसे तो विदाई ले कर आशीर्वाद दे दो !" अर्ध चेतना की अवस्था में भी बात उनकी समझ में आ गई। कहीं प्राण जल्दी न निकल जायें, यह सोचकर झट उल्टे होकर वे छाती के बल लेट गये। वे प्राण को तब तक छाती से दबाये रहे जब तक कि बेटा वापस न आ गया। भोजन करके बेटा वापस आया। उसने बाप को उल्टा देखकर सीधा किया। बापने धीरे से, दबी हुई आवाज में कहा– बेटा ! मैंने तुम लोगों को बडे लाड-प्यार से पाला। धन तो नहीं दे सका, पर गुण दिए हैं ! इसी के सहारे तुम लोग सदा सुखी रहोगे, यही मेरा आशीर्वाद है !" और फिर प्राण-पंछी अपने सूक्ष्म रूपमें, इस संसार को और अपने पिंजरे को छोड़कर अनन्त आकाश की ओर उड़ गया।

पिता के जीवन काल में ही एक दिन एक धनी-मानी और सुख-साधन से सम्पन्न परिवार के एक सद्गृहस्थ, श्री सुरेन्द्र सिंह के लिए विवाह का प्रस्ताव लेकर आये थे। वे लड़की के पिता थे। और काफी अरसे से सिंह परिवार से भली भाँति परिचित थे। श्री सुरेन्द्र सिंह सामान्य रूप से देखने में सुन्दर और सुडौल, रंग से गौर और कद से काफी ऊँचे और बदन से छरहरे तथा चुस्त दिखाई देते हैं। उनका रहन-सहन और

चाल-ढाल सीधा-सादा और सामान्य है । उनके व्यक्तित्व में असाधारण और विशेष कुछ भी नहीं है, फिर भी वे बहुत ही प्रभावशाली हैं । एक बार भी अगर कोई उन्हें मिलता है, तो उनसे प्रभावित हो जाता है । उनमें क्या है, यह तो मैं भी आज तक नहीं जान सका; पर कुछ है अवश्य, तभी हमारी मित्रता की गंगा-जमुना २५-३० वर्षों से निरंतर अबाध रूप से मिलती और बहती आ रही है । शायद उनके इसी स्वभाव और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उक्त सज्जन ने अपनी लड़की के लिए उन्हें ध्यान में रखा होगा । उस सज्जन ने बड़ी सफाई और कुशलता से श्री सुरेन्द्र सिंह के पिता के सामने अपना प्रलोभनयुक्त प्रस्ताव रखा उन्होंने कहा– " यदि सुरेन्द्र मेरी लड़की से विवाह करेगा, तो लड़की के नाम जो जमीन-जायदाद और अलग सुन्दर मकान है, उसे अपने आप मिल जायेंगे; और इसके साथ ही उसे सब सुख-सुविधा के साधन प्राप्त हो जायेंगे । यह उसके लिए भाग्य का ही संकेत और प्रस्ताव है । " लडके के पिता, श्री लैखमसेना सिंहने उसी चतुराई और नम्रता से उत्तर दिया– " आपकी लडकी हमारी ही है, यह घर भी उसका ही है । सुख-सुविधा के साधन तो, पुरुष अपने पराक्रम से प्राप्त करता है । अगर मेरे लड़के में योग्यता है, तो वह अपने पुरुषार्थ से अपनी पत्नी को सुखी और निहाल कर देगा । इतने संस्कार तो मैंने उसमें आरोपण किये हैं । हमें लड़के और लड़की की राय भी जान लेनी चाहिए । अगर वे एकमत हैं तो हम भी सहमत हैं । लड़कीकी राय तो आप प्रकट कर ही चुके हैं, अब लड़के की राय भी जान ली जाये । ' जब श्री सुरेन्द्र सिंह आये, तो उन्हें सारी बातें समझा दी गई और लड़की के

पिताने इस विवाह से होने वाले लाभ की ओर भी संकेत किया। यदि दूसरा कोई होता, तो इस प्रलोभन के सामने सिर झुका देता, और आसान धन और साधन को शीघ्र ही स्वीकार कर लेता; लेकिन पुरुषार्थ में विश्वास रखनेवाले नौजवान ने इस प्रस्ताव को नम्रता से टाल दिया। वे धन से नहीं, परिश्रम से अपने जीवन की नींव डालना चाहते थे। वे घुटनों और हाथों के बल पर चलनेवाले असहाय और नादान बालक की तरह सामने पड़ी हुई चमकदार और आकर्षक वस्तु को उठाकर मुँह में डालना पसंद नहीं करते थे, पर अपने पैरों पर खडे होकर परिश्रम से उस वस्तु को पाना चाहते थे, जो उन्हें पसंद है। उन्होंने लडकी के पिता को समझाकर कर कहा कि "मैं आत्मनिर्भर बनना चाहता हूँ। जिस समय मुझे आत्मविश्वास हो जायेगा कि मैं अपने पैरों पर दृढता से खड़ा हो गया हूँ और अब अपने कंधों पर दूसरे का भार भी उठा सकता हूँ, तब मैं विवाह के पवित्र बन्धन में बँधूँगा। पर अनिश्चित काल तक आप को ठहरने के लिए नहीं कह सकता। इसलिए आप किसी अन्य योग्य वर की खोज करें तो अधिक व्यावहारिक होगा। आप को लाचारी से निराश कर रहा हूँ, इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

गाँव में भोजन पकाने के लिए लकड़ी का उपयोग किया जाता है। यह लकड़ी जंगल से लाते हैं। श्री सुरेन्द्र सिंह भी हफ्ते में एक बार जंगल में जाते और सप्ताह भर के लिए लकड़ियाँ तोड़-बटोर लाते थे। जब कभी उनकी माताजी अस्वस्थ होतीं, तब वे ही भोजन बनाते और बर्तन माँजते थे। एक बार तो उन्होंने कमाल ही कर दिया था। वे लगातार कई दिनों तक

जंगल में जाते रहे और इस प्रकार तोड़-बटोर और काटकर पूरे वर्षभर के लिए उन्होंने लकड़ियाँ जमा कर ली थीं। घर के ऊपर की छप्पर बनाने के लिए विशेष प्रकार की घास की आवश्यकता होती है। यह खास घास नदियों और तालाबों के कछार प्रदेश में उगती है। इसे सरपत और नरकुल कहते हैं। यह घास नर-कद की ऊँचाई की होती है। श्री सुरेन्द्र सिंह इस घास को स्वयं चुनते, काटते और छप्पर के ढाँचे में जमाकर बाँधते और घर की छत छाते थे। काम के प्रति इतनी लगन और परिश्रम के प्रति इतना प्यार था। इसी परिश्रम के कारण वे आज भी वैसे ही दीखते हैं, जैसे आज से तीस वर्ष पहले दिखाई देते थे। बाल काले और चमकदार, यह है परिश्रम का रंग और चमत्कार। शरीर चुस्त और मन प्रसन्न।

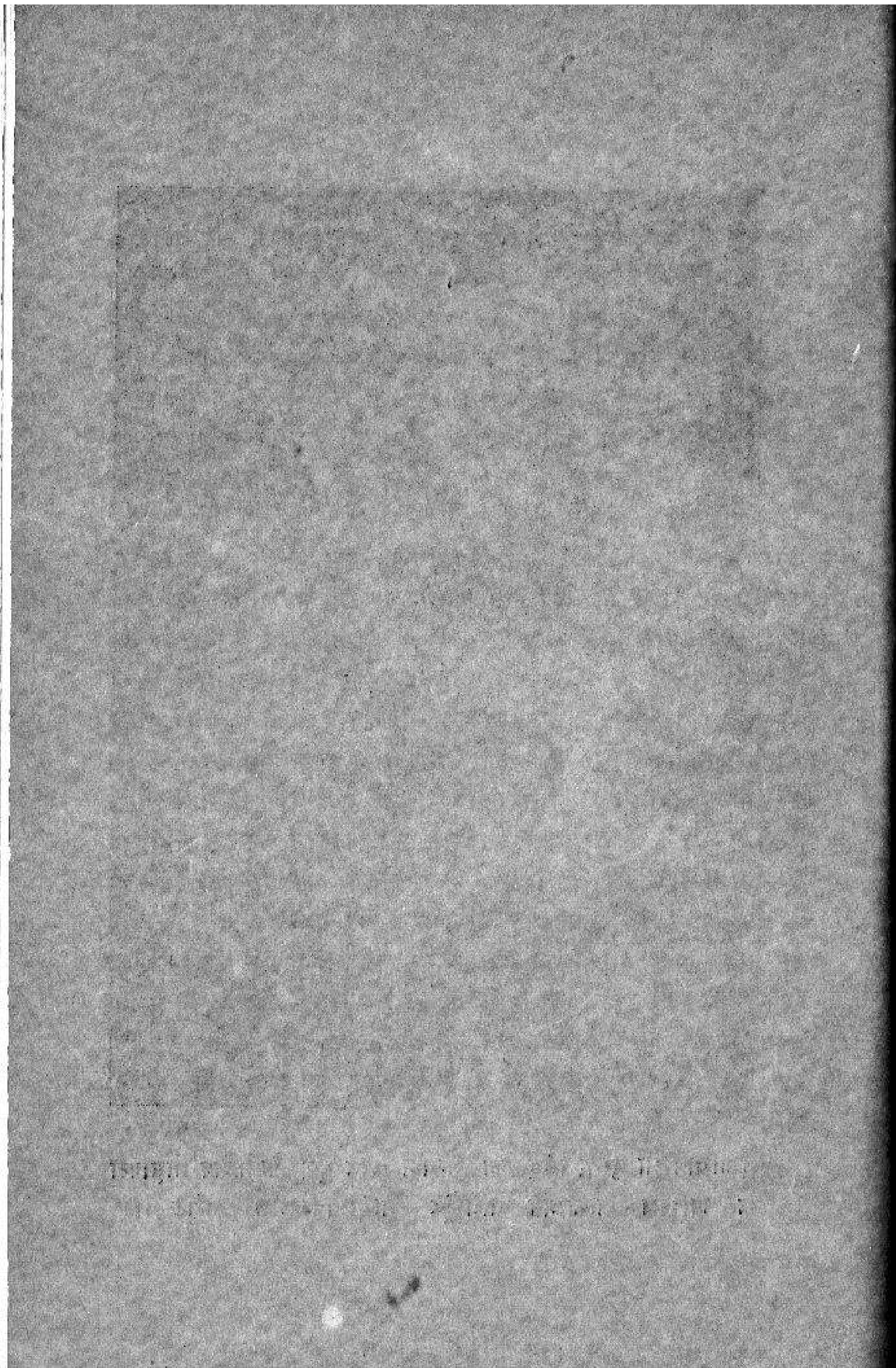
अब तक उन्होंने शारीरिक और मानसिक श्रम किया था, जिससे तन और मन दोनों स्वस्थ और मस्त हो गये थे; लेकिन अब उन्होंने बौद्धिक कार्य करके भाग्य को आजमाने का विचार किया, ताकि वे धन और यश प्राप्त कर सकें। उन्होंने अपने बड़े भाई श्री विपिन सिंह के पास बम्बई जाने का निश्चय किया। मनुष्य निश्चय तो आसानी से कर लेता है, लेकिन उसके निश्चय को डिगाने के लिए अनेक बाधायें उपस्थित हो जाती हैं, इसका ख्याल उसे नहीं आता। एक अन्तर्राष्ट्रीय खेल होता है, जिसे बाधा-दौड़ कहते हैं। इस दौड़ में अनेक बाधायें और अड़चनें बीच-बीच में रखी जाती हैं, अपने गन्तव्य स्थान को पहुँचने के लिए इन बाधाओं और अड़चनों को पार करना पड़ता है।

दीवार लाँघकर, फन्दे में कूदकर, गुफा में झुककर, टेढ़े-मेढ़े रास्ते में मुड़कर, खतरा बचाकर मंजिल की ओर बढ़ना पडता है। यही खेल हमें जीवन में भी खेलना पड़ता है। परिस्थितियों के अनुसार हमें मुड़ना और झुकना पड़ता है। श्री सुरेन्द्र सिंह पैसा कमाने के लिए बम्बई चले तो सही, लेकिन पैसा कमाने के लिए पैसा लगाना पडता है, यह बात उन्हें आज मालूम हुई। बम्बई पहुँचने के लिए काफी पैसा चाहिए, और पैसा तो उनके पास था ही नहीं। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोग अपने सिद्धान्त को तोड देते हैं। हमें अपने सिद्धान्त को तोडना नहीं, मोडना चाहिए ताकि साँप तो मर जाये, लेकिन लाठी टूटे नहीं; क्योंकि इसी लाठी के सहारे तो हमें अपना मार्ग ढूँढना है, अपनी मंजिल पर पहुँचना है।

गाँव में मेहनत से पेट भरता है, पैसा नहीं मिलता। उन्होंने उधार माँगने के बहाने मित्रों और सगे-सम्बन्धियों की जाँच की। इस अग्नि-परीक्षा में उन्हें तपाया, तो कोई जलकर राख हो गया कोई लोहा, कोई मुलम्मा लगा ताम्बा, कोई कलई चढा पीतल निकला। किसी ने बहाना बताया पैसा होता तो तुम्हारे जैसे नेक और होनहार नौजवान को अवश्य दे देता, लेकिन अभी-अभी साहूकार का कर्ज चुका दिया है। किसी ने दर्शनशास्त्र के दर्शन कराये "पैसा तो हाथ का मैल है, लेकिन इस समय हाथ में है नहीं, नहीं तो अभी प्रदान करके पावन हो जाता।" दूसरे ने व्यंग्य का नमूना बताया– बाबू साहब! गाँव में शाक-भाजी उगती है, फल-फूल पैदा होते हैं, पैसा नहीं फलता, नहीं तो थोडा सा उतार



नृत्याचार्य श्री सुरेन्द्र सिंह का सन्मान करते हुए फेलोशिप सोसायटी के उपाध्यक्ष तत्कालीन मेजिस्ट्रेट श्री जयदेवलाल बारोट ।



कर दे देने में क्या श्रम लगता है, एकने वक्रोक्ति में कहा कि पैसा दुश्मनी का बीज है। इसे देकर दुश्मनी बोना ठीक नहीं। एक आदमी खरा सोना तो निकला, लेकिन थोड़ा ही। इतनी रकम में बम्बई तो क्या, कलकत्ता भी मुश्किल से पहुँच सकते हैं,। जब बिल्ली चारों तरफ से घिर जाती है; तो घेरेंमेंसे बच निकलने के लिए, मरणिया प्रयास करती है; वह बिल्ली से बाघ बन जाती है, और कोई सफल हमला करके निकल जाने का उपाय सोचती है। श्री सुरेन्द्र बाबू ने भी सोचा कि बम्बई न सही, कलकत्ता ही सही। वहाँ से फिर कुछ और उपाय सोचेंगे, कुछ और इन्तजाम कर लेंगे। लेकिन इस रकम से वे कलकत्ता भी नहीं पहुँच सके, पूर्व बंगाल में ही उतरना पड़ा। वहाँ रेल्वे में काम करने वाले एक दूर के रिश्तेदार से (३०) तीस रुपये उधार मिले। इससे वे कलकत्ता उतर गये। फिर कलकत्ता में अपने एक मित्र निर्मल रॉय की बहन से कुछ रुपये प्राप्त करके श्री सुरेन्द्र सिंह किसी तरह बम्बई आ पहुँचे। यहाँ वे अपने अग्रज और अग्रागन्तुक श्री विपिन सिंह के साथ परेल में रहने लगे। उस समय वे बम्बई की किसी भी भाषा से परिचित नहीं थे। हिन्दी के सहारे वे अपना काम आसानी से चला लेते थे। सौभाग्य से यहाँ प्रसिद्ध नृत्य-शिक्षिका सुश्री शिरिन वजिफदार के नृत्य-वर्ग में काम करने का सुअवसर मिल गया। फिर धीरे-धीरे नृत्य सिखाने का काम बाहर भी मिलने लगा। क्रमशः वे इस कार्य में इतना व्यस्त रहने लगे कि बीच में आराम करने के लिए मुश्किल से थोड़ा समय मिलता था। निरन्तर कार्य-रत रहने के कारण और आमदनी बढ जाने की वजह से, उनमें स्वावलम्बन का बल और आत्म-विश्वास की भावना जाग उठी। अब वे पूर्ण रूप से सुदृढता से

अपने पैरों पर खडे हो चुके थे और किसी और का भार भी अपने कंधों पर वहन करने के लिए पूर्ण सामर्थ्य रखते थे। आत्म-विश्वास की भावना बल देती है और जीवन में अभिलाषा की ओर प्रेरित करती है। उसने प्रेरणा दी कि वे अपनी माता को पत्र लिखें कि अब विवाह करने के लिए उन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

माताजी ने अपना अभिप्राय गाँव में जाहिर किया और कुछ ही दिनों में अनेक कन्यायें विवाह के लिए तैयार हो गई। उन्हों ने एक कन्या को चुना जो अब श्री सुरेन्द्र सिंह की धर्म-पत्नी हैं, और उनके बच्चों की माँ। तीन लडके, एक लडकी।

श्री सुरेन्द्र सिंह का जन्म २६ मार्च १९२१ में हुआ था बचपन से ही उन्हें नृत्य-संगीत और गाने-बजाने का शौक था। इन विद्याओं और कलाओं का संस्कार बचपन में उनके पिताने डाला था और बाद में उन्होंने बडे-बडे गुरुओं से अर्जित की थीं।

गाँव की रासलीलाओं में अनेक बार कृष्ण के पात्र का सफल अभिनय किया था। उन दिनों नाटकों में स्त्री या लडकी नहीं मिलती थी। लडके ही स्त्री का अभिनय करते थे। श्री सुरेन्द्र सिंह ने कई बार स्त्री पात्रों अभिनय करके लोगों को आश्चर्य-चकित कर दिया था। और लोगों कीं प्रशंसा का पात्र बन गये थे। उन्होंने "निमाई सन्यास" में श्री चैतन्य की पत्नी-'विष्णु-प्रिया' एवं "नौका-विहार" में 'राधा' का अभिनय किया था। तब लोगों को मालूम भी नहीं हुआ कि लडका काम कर रहा है या लडकी। सब पात्र के अभि-नय में आत्मविभोर हो गये थे। कालान्तर में जब पता चला तो लोगों

ने बडी प्रशंसा की और वे लोगों में उन दिनों बहुत लोकप्रिय हो गए और चर्चा के पात्र बने रहे। जहाँ कहीं भी स्त्री का पात्र होता, वहीं पर उन्हें आमन्त्रण मिलता।

एक बार दुर्गा – पूजा के समय "सती बेहुला" नाटक में उन्होंने सती बेहुला का पात्र किया। यह नाटक बिना कांधी (चाय बगान) में खेला गया था। अभिनय के समय इनका गाना सुनकर लोग मुग्ध हो गये थे। अचानक गाते–गाते उनका गला रुँध गया, बार-बार प्रयत्न करने से, जोर पडने पर आँखें बाहर आने लगीं! लोगों के दिल को गहरा धक्का लगा। वे चिल्ला उठे – 'अरे, बेचारे को किसी की नजर लग गयी।' किसी और ने कहा – 'किसी ने जादू टोना तो नहीं कर दिया?' हारमोनियम की अंतिम पट्टी अर्थात पूर्ण सप्तक तक अपनी आवाज को बडी सरलतासे ले जाने वाले, अपने बेटे की ऐसी दुर्दशा देखकर बाप आकुल–व्याकुल हो गये। ऐसे तो उन्हें अनेक विद्याये आती थीं। भूत–प्रेत की उन्होंने साधना की थी। जादू के खेलों में वे निष्णात थे। लोगों का टोना वे उतारते थे। और ज्योतिष विद्या पर तो उनका परम अधिकार था। लेकिन बेटे की दुर्दशा देखकर वे सारी विद्यायें भूल गये। इस भयंकर आफत के समय उन्हें सिर्फ देवी–देवता ही याद आए। उन्होंने भगवती दुर्गा माता की मान्यता ली, उन्हें प्रसाद चढाया और प्रार्थना की कि–' हे माता! इस बच्चे का दुःख दूर करो, इसे इस कष्ट से मुक्त करो। हम तुम्हारी शरण में आये हैं। अपने भक्त की लाज रखो!' फिर दुर्गा माता को चढाया हुआ प्रसाद, पीडीत श्री सुरेन्द्र सिंह को खिलाया। कोई अब माने या न माने, लेकिन उस समय के लोगों

ने भक्ति का अद्भुत चमत्कार देखा। प्रसाद खाने और जल पीने के कुछ ही समय बाद श्री सुरेन्द्र सिंह को 'दीर्घ शंका' का अनुभव हुआ। 'दीर्घ शंका' के समाधान के बाद तुरन्त उनका बन्ध गला खुल गया और वे सब से स्वाभाविक रूप से बातें करने लगे। इसी लिए हम कहते हैं कि देवी - देवता और उनके चमत्कार को नमस्कार!

मैं गौतम मिश्र, श्री सुरेन्द्र सिंह को २५-३० वर्षोंसे जानता हूँ। उनका मित्र और शुभेच्छुक होने के कारण उनके जीवन और स्वभाव से भली भाँति परिचित हूँ। फिर भी कुछ विशेष दृष्टि-कोण से उनके जीवन की कुछ और खास बातें भेंट-वार्ता (इन्टरव्यू) रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

गौतम मिश्र -

सुरेन्द्र बाबू! नृत्य-शिक्षक, नृत्य-रचयिता और नृत्य-दिग्दर्शक के रूप में आपने अपने जीवन के बहुमूल्य (३८) अड़तीस वर्ष बम्बई में व्यतीत किये। इस अंतराल में सिलसिले में आपने देश-विदेश की यात्राएँ कीं। आपने स्वदेशी और विदेशी शिष्य-शिष्याओं को नृत्य सिखाया आप कहाँ-कहाँ गये, क्यों गये और क्या-क्या किया; इस विषय में कुछ जानकारी दीजिए?

श्री सुरेन्द्र सिंह -

गौतम भाई! अहमदाबाद में कुछ संस्थायें हैं, जो नाटक और नृत्य-नाटिकायें किया करती हैं। मैं उनके लिए नृत्य-रचना और नृत्य-दिग्दर्शन करने

जाया करता था । मैं श्री डी. के. रॉय के साथ सांस्कृतिक कार्यक्रम बनाने और पेश करने पॉण्डिचेरी भी गया था। यह कार्यक्रम योगीराज श्री अरविन्द आश्रम में श्री माताजी और अन्य गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में जनता के सामने प्रस्तुत किया गया था, जिसकी खूब प्रशंसा हुई थी । और भारत सरकार की ओर से प्रसिद्ध नर्तक श्री राम गोपाल की पार्टी में शामिल होकर [यू. के.] युनाइटेड किंगडम भी गया था । वहाँ भारतीय संस्कृति की झलक प्रस्तुत करते हुए नृत्य और संगीत के सुन्दर कार्यक्रम का प्रदर्शन किया गया । वहाँ की पत्र पत्रिकाओं में इसकी काफी चर्चा और प्रशंसाकी गयी। सन् १९४८ में अमेरिका जाने का आमंत्रण भी मिला था, लेकिन कुछ कारण वश नहीं जा सका। अब तक मैंने लगभग पचास नृत्य–नाटिकाओं करीब पचास विविध नृत्य–कार्यक्रमों की रचना और निर्देशन तथा संचालन किया है । अनेक नृत्य–स्पर्धाओं में निर्णायक के रूपमें नियुक्त होकर भी मैंने अपनी सेवायें अर्पित की हैं ।

गौतम मिश्र –

बाबू साहब ! सचमुच आपने नृत्य–कला की खूब सेवा की है और उसका प्रचार करने में पर्याप्त योग दान किया है । आपकी शिष्य यें जापान, पेरिस, इंगलैंड और मॉस्को में नृत्य–वर्ग चलाती हैं। इस दृष्टिकोणसे आपका काफी नाम होना चाहिए था, आपको पर्याप्त प्रसिद्धि मिलनी चाहिए थी। लेकिन आपको जितना प्रचार और यश मिलना चाहिए था, उतना मिला नहीं । यद्यपि नृत्य से संबंधित जितनी पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है, उनमें आपका नाम सम्मिलित है,

फिर भी कई ऐसी पुस्तके हैं, जिन में, आपसे सुपरिचित होते हुए भी, लेखकों और प्रकाशकों ने आपके नाम का उल्लेख तक नहीं किया है। बड़ी खूबी से आपके नाम की उपेक्षा कर दी गयी है। यह बडे आश्चर्य की बात है। आखिर कला के क्षेत्र में ऐसा क्यों ?

श्री सुरेन्द्र सिंह –

कला के क्षेत्र में ही क्यों ? यह तो समाज के हर क्षेत्र में हो रहा है ? इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह सामान्य मनुष्य का स्वभाव है कि वह समान स्तर या उच्चस्तर के उसी पेशेके दूसरे व्यक्ति को कोई महत्त्व नहीं देता, अगर वह महत्त्व देगा, तो उसका अपना महत्त्व कम हो जायेगा। यह तो मैं उनकी मेहरबानी मानता हूँ कि उन्होंने मेरी निन्दा नहीं की ? अब आती है प्रचार और यश की बात ? आपने भी तो नृत्य–नाटिकायें लिखी हैं ? आप को कितना प्रचार और यश मिला ? बात यह है कि जिनके हाथों में प्रबन्ध रहता है, वे ही प्रचार करते हैं, और वे ही सारा यश बटोर लेके की कोशिश करते हैं। एक कहावत प्रसिद्ध है कि – 'ठाकुरपुर में ठाकुर बसें ; खुद ही छींकें, खुद ही हँसें।'

नाम या यश प्रचार से ही मिलता है। प्रचार के लिए पैसा चाहिए, या पैसेवाले समर्थक अथवा प्रशंसक चाहिए। पैसा तो मेरे पास इतना नहीं है कि अपने प्रचार में खर्च करूँ। मेरे प्रशंसक और समर्थक तो हैं, लेकिन वे ऐसे नहीं हैं, जो मेरे प्रचार के लिए पैसे खर्च कर सकें। आप भी तो मेरे प्रशंसक और समर्थक है। मेरे लिए तो आपकी शुभ कामनाएँ ही बहुत हैं। मेरी कुछ

शिष्याएँ पैसेवाली तो हैं, लेकिन महत्त्वाकांक्षी नहीं हैं। जब वे आगे नहीं बढना चाहतीं, तो गु आगे कैसे बढ सकते हैं, गुरु तो केवल मार्ग-दर्शक होते हैं, शिष्याएँ मेहनत करती हैं, उन्नति करती हैं, विश्व में आगे बढती हैं, उनका नाम होता है, और उनके साथ ही गुरु का भी नाम और प्रचार हो जाता है।

पत्र-पत्रिकाओं द्वारा भी कलाकार का नाम और प्रचार होता है। इसमें पैसे का खेल तो है ही, दूसरे और भी खेल हैं, जो कुशल खेलाडी ही जानते हैं। वे ही पासा फेंकते हैं, और नाम बटोरते हैं। यह तो लेन-देन का खेल है? कुछ भी दो, परन्तु पाने के लिए देना तो पडता ही है। ऐसा मैं नहीं कर सकता, यह कुशलता मुझमें नहीं है। आपने पत्र-पत्रिकाओं में चित्रपट की समालोचना पढी होगी। प्रशंसा पढकर आप देखने जाइए, तो चित्रपट में वैसा कुछ होता ही नहीं। आप खुद चित्त और पट्ट हो जाते हैं। इसके विपरीत, कभी आलोचना होती है कि 'कहानी ठीक है, लेकिन ऐसी होती तो अधिक अच्छा होता। संगीत में काफी सुधार और समझ-बूझ और अनुभव की आवश्यकता मालूम होती है। निर्देशन कुछ कुछ ठीक ही है, लेकिन कुछ और कल्पना और व्यावहारिकता की जरूरत है। इसको अच्छा बनाने में कफी सुधार की गुंजाइश है। गीत अच्छे हैं, लेकिन कुछ जमते नहीं हैं'। और जब देखने जाइए तो आप देखकर खुश हो जायेंगे। खैर, यह तो अपना अपना मत है, अपना अपना दृष्टिकोण है।

एक और बात है। प्रचार और प्रशंसा न होने से नाम और यश नहीं मिलता, लेकिन इससे गुण तो कम नहीं हो जाता।

हमारे बड़े-बड़े गुरु जन गाँव में रहते हैं । हम शहर में आ गए, हमें नाम और यश मिला, चार लोग हमें जानने-पहचानने लगे । इसका मतलब यह नहीं कि हम बड़े हो गए हमारे गुरु हम से छोटे हो गए; हम गुणवान हो गए और हमारे गुरुजी का गुण जाता रहा । इसके विपरीत, हमारी उन्नति का सारा श्रेय उन्हीं को जाता है । विद्यालयों, मंडलों, वर्गों और व्यक्तिगत अध्यापन के विद्यार्थियों को मिलाकर मेरे शिष्य शिष्याओं की संख्या लगभग [१०००००] एक लाख है। लेकिन ये सब नवसिखिया और शौकिया सीखने वाले हैं । ये अस्थाई और अव्यावसायिक हैं ये तो जुगनू की तरह कभी-कभी कहीं-कहीं चमक जाते हैं । इनसे गुरु का नाम नहीं होता । इनका प्रकाश इतना नहीं होता कि गुरु के नाम को रोशन कर सकें । गुरु के नाम को प्रकाश में लाने के लिए तो, फ्लड लाइट सर्च लाइट और स्पॉट लाइट, की आवश्यता होती है । ऐसे होनहार, परिश्रमी, और प्रतिभा-सम्पन्न शिष्य-शिष्याओं की, जिनकी जिज्ञासु दृष्टि गुरु के चरणों के दर्शन किया करती है, विनम्र मस्तक गुरु के आशीर्वाद के लिए सदा झुका रहता है और अधीर मन गुरु से नित-नवीन कुछ सीखने के लिए उत्सुक रहता है ऐसे विद्यार्थी ही गुरु को देवत्व की ओर ले जाते हैं, उसे गुरू से गुरुदेव बना देते हैं। ऐसे शिष्य व्यावसायिक कलाकार होते हैं। वे नृत्य-कला को अपना पेशा बनाकर, उसमें संशोधन, परिमार्जन और परिवर्धन करके उसका सार्वजनिक भव्य प्रदर्शन करते हैं। इन्हींके कुशल प्रदर्शन के माध्यम से गुरु की कला और योग्यता झलकती है । इन्हीं की श्रध्दा और भक्ति से गुरु का नाम अमर हो जाता है । हाथी के दाँत दो प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के दाँत संख्या में अधिक मुँह के अन्दर, सुदृढ, सुडौल,



लेखक श्री सुरेन्द्र सिंह के साथ इस पुस्तक के अनुवादक एवं उनके घनिष्ठ मित्र श्री गौतम मिश्र ।

खाने के लिए उपयोगी । दूसरे प्रकार के दाँत, केवल दो; मुँह के बाहर; सुन्दर, कलात्मक, शोभावर्धक । ये हाथी की शान और भव्यता का प्रदर्शन करते हैं मुझे संतोष है कि मेरे खाने के दाँत सलामत हैं । और प्रदर्शन में मेरी रुचि नहीं है ।

गौतम मिश्र –

हाथी के दाँत का तो बहुत ही दार्शनिक उदाहरण दिया आपने और वाह, बाबू साहब ! आदर्श शिष्य का तो ऐसा चित्र उपस्थित किया कि मन प्रसन्न हो गया.........

अच्छा ! एक बात और बताइये ! भूतकाल में आपको कुछ फिल्मों में नृत्य-निर्देशन करने का अवसर मिला था, फिर इस सोने की खान को छोड़कर आप चले क्यों आए ?

श्री सुरेन्द्र सिंह –

यही बात मैं आप से पूछता हूँ कि फिल्मों में आपको भी गीत, संवाद कहानी लिखने और निर्देशन करने का मौका मिला था। (आपकी एक फिल्म में तो मैं भी था , आपके साथ) फिर, फलों से भरे इस सब्ज बाग का त्याग आपने क्यों कर दिया ? ......हम दोनों का उत्तर एकही है — वहाँ का वातावरण हमारे स्वभाव के अनुकूल नहीं है ।...... गौतम भाई ! पर्वत दूर से बहुत सुन्दर और लुभावना लगता है । सुबह-शाम उसका नयनाभिराम सुनहला सौन्दर्य मन को मस्त और आँखों को मुग्ध कर देता है । लेकिन पास जाने पर उसका असली रूप दिखाई देता

है – भद्दा, भयंकर, कठोर !...... दूर-दूर बजते हुए ढोल का स्वर सुहावना लगता है – मादक, मंद, मधुर ! और पास से – कर्कश, कटु, कठोर ! ......सोना देखने में अच्छा लगता है, खाने में नहीं !

दूसरी बात यह है कि फिल्मों में निर्माता और निर्देशक की इच्छा के अनुसार, उनके दबाव में काम करना पड़ता है । " वे 'बॉक्स ऑफिस हिट' करके, पैसा खींचने के लिए 'यौन–आकर्षण' दिखाना चाहते हैं । वे नृत्य में अंग - प्रत्यंग का इस प्रकार अश्लील प्रदर्शन कराना चाहते हैं कि यौवन और नितम्ब के झटके की मीठी मार खाकर, आदमी बेचैन हो जाये, और इस अधूरे रस का पूर्ण आनन्द लेने के लिए बार-बार देखने आए । वे ऐसे नृत्य की रचना कराना चाहते हैं, जो अस्वाभाविक भले हो, लेकिन आकर्षक अवश्य हो ! देखनेवाले झूम उठें, मस्त हो जायें, खिंचाव से तन जायें । नृत्य में उत्तेजना हो ताल हो, लय हो, प्रलय हों । "

नृत्य–संगीत में ताल और लय तो होते हैं, लेकिन प्रलय नहीं होता । शायद वे देखनेवालेका प्रलय, याने नैतिक पतन कराना चाहते हैं, । यह काम मुझसे नहीं हो सकता ! मैं शिक्षक हूँ । अच्छे–अच्छे परिवारों की सभ्य, सुशील और सम्भ्रांत महिलायें और कन्यायें, मेरी शिष्यायें हैं, मुझसे नृत्य सीखती हैं । अश्लील नृत्य–रचना करके यौन - दर्शन कराना, मैं पसन्द नहीं करता; यह मेरे स्वभाव और सिद्धान्त के विरूद्ध है । इससे मेरे व्यवसाय और मेरे शिष्य–शिष्याओं पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है ।

मैं समाज में सभ्यता का सुधार और सुसंस्कारों का विकास पसन्द करता हूँ, इनका ह्रास और विकार नहीं चाहता। मैं अभद्र और अशिष्ट व्यवहार तथा भद्दे और असभ्य पोशाक के प्रचार को प्रोत्साहन देना पसंद नहीं करता ।

फिल्मवाले, निर्माता और निर्देशक भारतीय सभ्यता और संस्कृति की सुन्दर झलक और प्राचीन तथा अर्वाचीन गौरवमय इतिहास के आदर्श चरित्र के नमूने (उदाहरण) प्रस्तुत करने के बदले, व्यर्थ और अनर्थकारी आदर्श भेंट करते हैं । इन्होंने हत्या, लूट–पाट, ठगी और मारा–मारी के चित्र बना कर खुद तो खूब पैसा बना लिया और समाजके सीधे – सादे, होनहार नौजवानों को, हत्यारा, लुटेरा और गुण्डा बना दिया । ये नौजवान धनवानों और विद्वानों का आदर करने के बदले, उनकी हत्या करते हैं । अकेली अबला महिलाओं की इज्जत, दौलत और आभूषण लूटते है । नवयुवतियों को देखकर सीटी बजाते और छेड़ते हैं । बच्चों और बालकों का रक्षण करने के बदले उनका अपहरण करते हैं । ये संस्कार इन्होंने आधुनिक फिल्मों से सीखे हैं ।

गिरगिट तो अनजाने में, सहज ही वातावरण के अनुसार अपना रंग बदलता है, लेकिन हमारे नौजवान तो जान-बूझकर, पर बिना सोचे-समझे ही रंग (वेश) बदलते हैं, वे विदेशी फैशन की अन्धा-धुन्ध नकल करते हैं । चुस्त इटॅलियन पैंट और बेल बॉटम में तथा भडकीले रंग–बिरंगी कपडों में पूरे विदूषक (जोकर) लगते हैं । उनके शरीर की चुस्ती चली गयी और कमीज में चुस्ती आ गयी

है । कमीज औरतों की चोली के समान चुस्त दीखती है । आज-कल की वेश भूषा (फैशन) ने तो हद कर दी है । कभी किसी पोशाक में लड़का, लडकी लगता है, तो कभी किसी पहनावे में लड़की, लड़का दीखती है। और कभी तो फैशन कमाल चमत्कार दिखाता है - लडका, न लडका दीखता है, न लडकी; और लडकी न लडकी (लगती) है, न लडका । ये लगते हैं दोनों के बीच ! न पुल्लिंग, न स्त्री लिंग ! है न चमत्कार! यह सब आजकल के चलचित्रों की महर-बानी और देन हैं। मेरा मतलब आप समझ गये होंगे गौतमभाई !

गौतम मिश्र

जी, हाँ! भाई साहब ! समझदार के लिए तो संकेत ही काफी होता है ।

सुरेन्द्र सिंह

यह सब चमत्कार इस लिए होता है, क्योंकि हमारे निर्माता और निर्देशक हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति को महत्त्व नहीं देते हैं। मैं यह नही कहना चाहता कि हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति ही अच्छी है और बाकी सब खराब है। सभ्यता और संस्कृति का अर्थ है, आदर्श जीवन !

सादा और सरल रहन – सहन, शुद्ध और सात्विक खान–पान शिष्ट और सभ्य चाल – चलन, उदार और प्रगतिशील विचार - व्यवहार सुन्दर और सौम्य वेश - भूषा, भद्र और विनम्र बात-चीत, ये अच्छी

सभ्यता और संस्कृति के लक्षण हैं । ये लक्षण जिनमें हों, वे ही सभ्य और सुसंस्कृत हैं; चाहे वे भारतीय हों, या विदेशीय !

गौतम मिश्र —

वाह, बाबू साहब ! सभ्यता और संस्कृति का इतना सुन्दर और स्पष्ट विश्लेषण आपने किया कि मन मुग्ध हो गया ! अवश्य ही यह 'आदर्श जीवन' जीने वालों को सभ्य और सुसंस्कृत बना सकता है।

अच्छा, सुरेन्द्र बाबू ! एक और विवाद-ग्रस्त विषय पर मैं आपसे चर्चा करना चाहूँगा ! - हमारे समाज में शैक्षणिक प्रमाण-पत्र पर अक्सर विवाद छिड़ जाता है । प्रमाण-पत्र धारक और अधारक, परस्पर विरोधी प्रचार करके एक दूसरे को अल्पज्ञ और अनुभव हीन कहते रहते हैं; और एक दूसरे को अपने कार्यक्षेत्र में अयोग्य और बेकार प्रमाणित करना चाहते हैं । यह कहाँ तक उचित है ? क्या किसी कार्यक्षेत्र में प्रमाण - पत्र जरूरी है, या अनुभव ही आवश्यक है ?

सुरेन्द्र सिंह —

गौतम भाई ! मेरे विचार से, दोनों अपनी-अपनी जगह पर महत्त्वपूर्ण और जरूरी हैं । विरोधी प्रचार तो अल्पज्ञ और अनुभव-हीन लोग ही करते हैं । मिलों और कारखानों में शिक्षित और अनुभवी दोनों प्रकार के अभियंता (इंजीनियर) काम करते और सफल होते हैं; सिर्फ सैद्धान्तिक शिक्षा हो और व्यावहारिक ज्ञान न हो, तो वह अभियंता (इंजीनियर) असफल रहता है; या फिर सफल होने के लिए

अनुभवी और कुशल कारीगर से सहायता लेता है। दूसरी ओर वर्षों से व्यावहारिक अनुभवी कारीगर काम तो कर लेता है, लेकिन अगर उसमें सैद्धान्तिक शिक्षा हो, तो वह उस काम को और भी कुशलता, सरलता और शीघ्रता से कर सकता है। कभी शिक्षित अभियंता (इंजीनियर) असफल रहता है और अशिक्षित किन्तु व्यावहारिक अनुभवी कारीगर सफल होता है। और कभी इसका उल्टा भी होता है। दोनों में व्यक्तिगत प्रतिभा, ज्ञान और अनुभव की आवश्यकता होती है।

कुछ शिक्षक बी. ए., बी. टी., या एम. ए, बी. एड. होकर भी अच्छी तरह नहीं सिखा पाते, और कुछ प्रतिभावान मैट्रिक होकर भी बहुत अच्छा सिखाते हैं; और वे विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय हो जाते हैं। मैंने खुद गुरु-शिष्य परम्परा में शिक्षा पायी है। पहले जमाने में नृत्य और संगीत में (कला, साहित्य और आयुर्वेद-चिकित्सा में भी) कुशलता और योग्यता का प्रमाण-पत्र नहीं मिलता था। सेवा करे, सो मेवा पाये! नृत्य संगीत की शिक्षा देकर गुरु कह देते थे — अब तुम काफी कुशल और योग्य हो गये हो। अब समाज में इस कला प्रचार और प्रसार करके, लोगों को ज्ञान और आनन्द बाँट सकते हो! — उस समय न गुरु के पास शिक्षा का प्रमाण-पत्र होता था, और न वह अपने शिष्यों को प्रमाण-पत्र देता था। वह जानता था कि योग्यता ही असली प्रमाण-पत्र है।

गौतम मिश्र –

वाह भाई साहब! एक-एक बात आप ऐसी बताते हैं, जो सचमुच बहुत ही व्यावहारिक है। यही जीवन का सही अनुभव

और निचोड है । अच्छा, बाबु साहब ! एक बात और बताइये ! — — हमारी संस्कृति और जीवन-दर्शन के अनुसार, जीवन को चार भागों में, याने चार आश्रमों में बाँट दिया गया है । ब्रह्मचर्य (विद्यार्थी) आश्रम, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास आश्रम । आजकल अंतिम आश्रम तक न हम पहुँचते हैं, और न उसका उपयोग करते हैं । अब वानप्रस्थ, याने अवकाश प्राप्त जीवन ही हमारे लिए अंतिम आश्रम होता है । इस आश्रम में जीवन बिताने के लिए, आपने क्या योजना बनाई है ? आपने अबतक कठिन परिश्रम ही किया है । अब, अपने भविष्य के जीवन को आराम और सुख - शान्ति से [व्यतीत करने] के लिए, क्या आपने कोई पूर्व आयोजन किया है ? कोई विशेष व्यवस्था, या कोई पूर्व प्रबन्ध ?

सुरेन्द्र सिंह –

गौतम भाई ! कल्पना करना और योजना बनाना, तो मनुष्यका काम है, लेकिन उसका प्रबन्ध करना और उसे सफल बनाना, तो ईश्वर का ही काम है । विद्यार्थी का धर्म है अपना कर्म करना, और परीक्षक का धर्म है, उसके कर्मों की जाँच करके, उसके अनुसार अंक याने फल देना । मैंने अबतक अपना धर्म निभाया है, अपना कर्म किया है; अब मेरा परीक्षक परमेश्वर अपना धर्म निभायेगा । मै कर्म योग में (विश्वास करता) हूँ, इसलिए फल की आशा नहीं करता ! मै अपने कार्य से अवकाश कभी नहीं लूगा ! जबतक हो सकेगा, तबतक काम करता ही रहूँगा ! हर एक के जीवन की योजना ईश्वर ही बनाता है, और वही

उसका प्रबन्ध भी करता है, आदमी क्या करेगा !

गौतम मिश्र –

अच्छा, सुरेन्द्रबाबू ! इस समय अचानक एक बहुत ही विचित्र और स्वाभाविक, किन्तु अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न मेरे (मन) में उठ रहा है। आपने इसकी कल्पना भी नहीं की होगी ? अगले वर्ष आप अपने जीवन के साठ (६०) वर्ष पूरे कर रहे हैं। वे संस्थायें जिन्होंने आपकी सेवाओं से लाभ उठाया है, क्या वे आपकी षष्टि पूर्ति के उपलक्ष्य में आपका सत्कार करने का विचार करती हैं ? क्या आपके उपकार के बदले, आपको कुछ पुरस्कार या भेंट देने वाली हैं ? क्या इस शुभ अवसर पर आपके जीवन को सार्थक बनाने के लिए आपको कुछ लाभ मिलने वाला है ? क्या आप के जीवन को धन्य बनाने के लिए कोई अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशित होने वाला है ?

सुरेन्द्र सिंह —

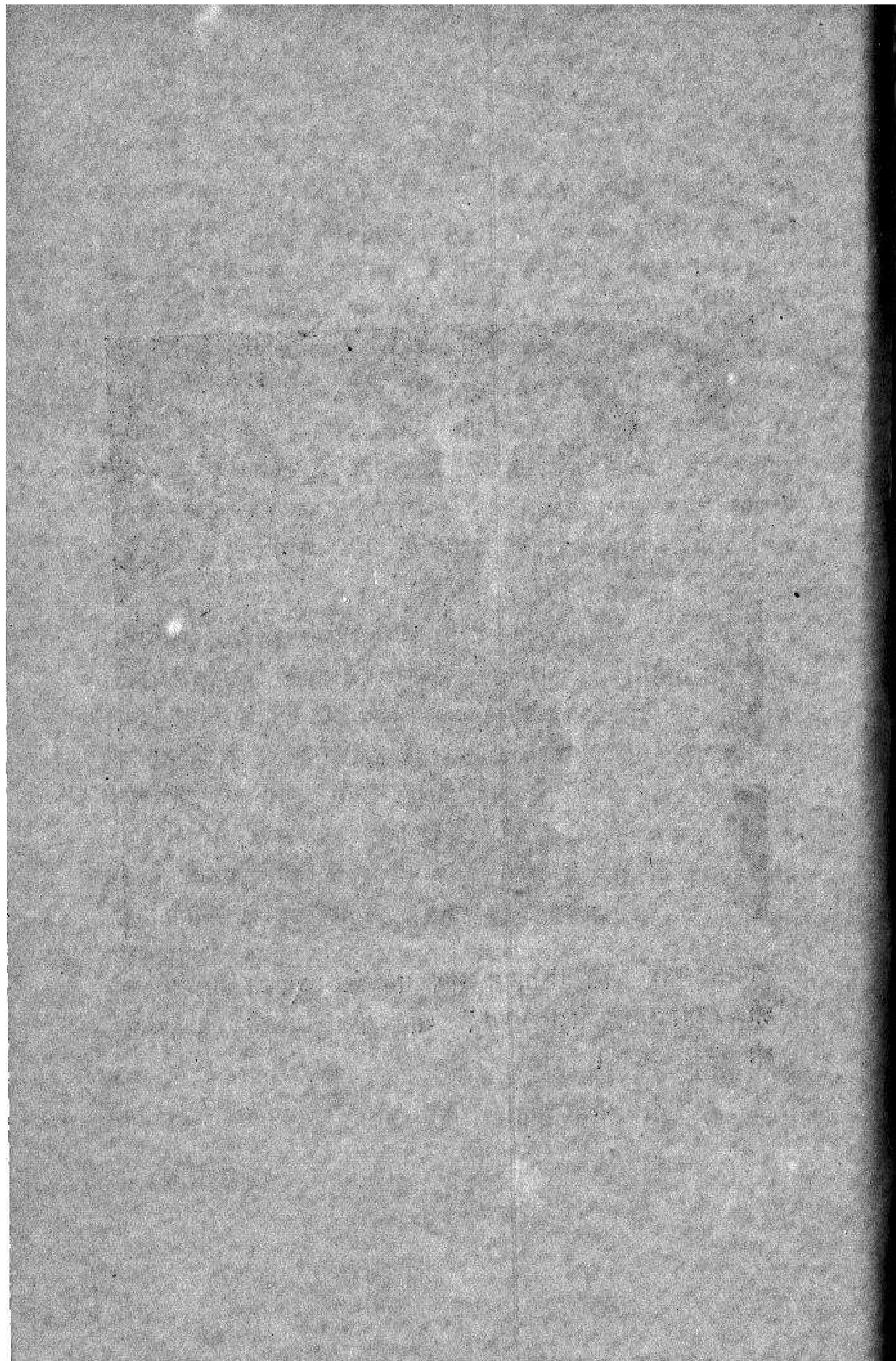
यह पुस्तक प्रकाशित हो जाये, यही मेरे लिए अभिनंदन ग्रंथ है। प्रेम तो अब–तक पाया है, धन मिले, न मिले ! मेरा कोई आदर–सत्कार करे या न करें ! यह देखना मेरा काम नहीं हैं।

गौतम मिश्र —

श्री सुरेन्द्र सिंह स्वभाव से सीधे, वेश भूषा से सादे, और बुद्धि से प्रखर प्रतिभावान है। वे कला-देवी के पुजारी हैं, सेवा करते है, यश रूपी मेवा भी चाहते है लेकिन भेंट और उपहार के



लायन्स क्लब द्वारा संचालित्त नृत्य वर्ग के उद्घाटन समारोह में श्री रामप्रसाद पोदार एवं श्री भाल मलजी के साथ श्री सुरेन्द्र सिंह ।



रूप में नहीं, बल्कि देवी के प्रसाद के रूप में। यश पाने के अनेक रास्ते हैं, मंजिल पर वे भी पहुँचना चाहते हैं, लेकिन अनुचित मार्ग से नहीं। कला ही उनका धन है, परिश्रम और सेवा से इसे अर्जित किया (कमाया) है और उदारता से इसका दान करते हैं। उनका अपना जीवन-दर्शन है, उसी के सिद्धान्त पर चलते हैं, और उससे अलग जरा भी टससे मस नहीं होते। धन को वे जीवन का साधन मानते हैं, लेकिन धन के लिए अपना धर्म और सिद्धान्त नहीं छोड़ते। अपनी कला में वे कुशल गुरु हैं, लेकिन अपने गुरुओं के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा और सम्मान है। गुरुओं के प्रति जितना मान-सम्मान और श्रद्धा है, शिष्यों के प्रति भी उतना ही स्नेह है।

श्री सुरेन्द्र सिंह वार्तालाप के समय किसी भी प्रश्न का उत्तर, बहुत ही धीरता और गम्भीरता से देते हैं। गम्भीर स्वभाव (प्रकृति) के होते हुए भी, उनमें हास्य और व्यंग्य की प्रतिभा और प्रयोग की कमी नहीं है। फिल्म लाइन की सारी कलायें वे जानते हैं, फिर भी उसकी बुराइयों से स्वयं बचना, और दूसरों को भी बचाना वे अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं,। आजकल की फिल्मों और आधुनिक नव जवानों पर उन्होंने करारा व्यंग्य किया है। वे मानते हैं कि आज के नव जवान ही देश (राष्ट्र) के भविष्य के निर्माता हैं, इसलिए पहले उन्हें अपना स्वयं का सुन्दर और योग्य निर्माण करना चाहिए। आदर्श शिष्य का जो चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह अनोखा तो है ही, किन्तु बहुत ही स्वाभाविक और व्यावहारिक है। हाथी के दाँतों का उदाहरण, जीवन की आंतरिक और बाह्य स्थिति की ओर संकेत करता है हमें जीवन में उपयोगी वस्तुओं की

अत्यंत आवश्यकता होती है, पर बाहरी शोभा और सजावट के लिए भी भव्य और दर्शनीय चीजों की ज़रूरत है। यही सच्चा और व्यावहारिक जीवन-दर्शन है। यद्यपि उनका सम्पूर्ण जीवन एक विचित्र दार्शनिक का जीवन है, फिर भी वे व्यावहारिक जीवन को बेकार और अयोग्य नहीं मानते।

सभ्यता, संस्कृति और आदर्श जीवन का, जो सिद्धान्त उन्होंने बताया है वह तो अनुपम और अनुकरणीय है। वे गीता के सिद्धान्त पर चलते हैं, कर्मयोग में मानते हैं और ईश्वर में सम्पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखते हैं। वे एक ही साथ कर्मशील, भाग्यवादी और आस्तिक व्यक्ति हैं। वे धन-सम्मान के पीछे नहीं दौड़ते; वे मानते हैं कि योग्यता होगी, और कर्म करेंगे, तो धन और मान-सम्मान छाया की तरह, पीछे-पीछे आयेंगे। लोग उगते [उठते] सूर्य को नमस्कार करते हैं, और ढलते [गिरते] सूरज का तिरस्कार। धनवान का आदर करते हैं, निर्धन का निरादर। श्री सुरेन्द्र सिंह उदयमान सूर्य की प्रार्थना करते हैं; और अस्तवान सूर्य की पूजा। धनवान का सम्मान और निर्धन की सेवा। यद्यपि वे जन्म और जाति से क्षत्रिय हैं, तथापि आचरण और विचारसे ब्राह्मण, – विश्वामित्र !

मैं ज्यों-ज्यों श्री सुरेन्द्र सिंह के निकट सम्पर्क में आता गया, त्यों-त्यों मुझे उनका अधिकाधिक परिचय प्राप्त होता गया। मैं उनके जीवन की आंतरिक बातों से भी परिचित होता गया। मुझे यह जानकारी मिली कि उन्हें नृत्य-कला में ही नहीं, बल्कि लेखन-कला में भी अभिरुचि है। मुझे यह भी मालूम हुआ है

कि उन्होंने कुछ ऐसी नृत्य-नाटिकाओं की योजनायें बनायी हैं, जिनसे उत्तम कलाकृति, उच्च आदर्श, और अनुपम देश-प्रेम के दर्शन होते हैं। मैंने यह भी सुना है कि उन्होंने अपनी मातृभाषा में अनेक सुन्दर गीत लिखे हैं। ये गीत उनके गाँव में, लोक-गीतों की तरह प्रचलित हैं। मेरी यही शुभकामना और प्रभु से प्रार्थना है कि शीघ्र ही उनकी कलाकृतियाँ प्रकाश में आयें और जनता उनसे लाभ उठाये !

श्री सुरेन्द्र सिंह ने एक लम्बे समय तक कला की साधना और सेवा की। उन्होंने पाँच वर्ष की छोटी उम्र से ही नृत्य सीखना शुरू किया; और फिर सन् १९४४ में बम्बई आने के बाद नृत्य सिखाना आरम्भ कर दिया। तब से लेकर आज तक उनके द्वारा की गई सफल कला-साधना, नृत्य-रचना, और नृत्य-दिग्दर्शन का संक्षिप्त परिचय, निम्नलिखित सूची के अनुसार है।:

क्रमांक – वर्ष – नृत्य-नाटिकायें – संस्थायें

१ – १९५० – कालिया-मर्दन – भगिनी समाज
२ – १९५१ – उषा (सह-दिग्दर्शक) – आई. एन. टी.
३ – १९५२ – फिल्म 'परछाई' – वी. शान्ताराम
(राजकमल कला मंदिर)
४ – १९५४ – ऋतु - रंग – चिल्ड्रेन्स एकेडेमी स्कूल
५ – १९५६ – 'रमकडा नी दुकान' – मॉडर्न हाई स्कूल
६ – १९५६ – 'जीवन एज नाटक' – रंग मण्डल (अहमदाबाद)
७ – १९५७ – 'सीता' और 'हालो खेतरमां' – फेलोशिप स्कूल

८ – १९५८ – अलख बाबा – फेलोशिप स्कूल
९ – १९५८ – रूप कोषा – शकुंतला गर्ल्स हाईस्कूल
१० – १९६० – अलख बाबा – ऑल इंडिया रेडियो शताब्दी
११ – १९६० – भानु सिंहेर पदावली – अरविन्द स्मारक समिति
१२ – १९६० – चित्रलेखा – शकुंतला गर्ल्स हाईस्कूल
१३ – १९६० – रूपकोषा – योगेन्द्र देसाई (कला भवन)
१४ – १९६० – युग-दर्शन – " " (" ")
१५ – १९६० – बृहन्नला – फेलोशिप स्कूल
१६ – १९६० – जनक दुलारी – वनिता विश्राम स्कूल
१७ – १९६० – 'एक कमल नुं फूल हतुं' – फेलोशिप स्कूल
१८ – १९६१ – 'एक कमल नुं फूल हतुं' – किरण संपट (कला दर्पण)
१ – १९६१ – चित्रार्जुन – फेलोशिप स्कूल
२० – १९६१ – बिल्ला राणा – चिल्ड्रेन्स एकेडेमी स्कूल
२१ – १९६२ – जंतर - मंतर – गुजराती हिन्दू स्त्री मंडल
२२ – १९६२ – 'कृष्ण-लीला' अने
'सागर नुं सोणलुं' – फेलोशिप स्कूल

२३ – १९६३ – वर्षा-मंगल – अरविन्द इन्टर नेशनल
सेन्टर ऑफ एज्युकेशन

२४ – १९६३ – फूल बंकावली – सरला सर्जन हाई स्कूल
२५ – १९६३ – 'विजय अने बदलो – चिल्ड्रेन्स लिटिल थियटर
२६ – १९६३ – देव-नर्तकी – फेलोशिप स्कूल
२७ – १९६४ – 'ग्राम्य जीवन' अने
'पंथ ना पंखीडा' – सरला सर्जन हाईस्कूल

क्रमांक	वर्ष	नृत्य-नाटिकायें	संस्थायें
२८	१९६४	घट घट मां घनश्याम	गुजराती हिन्दू स्त्री मंडल
२९	१९६४	शिव-लग्न	फेलोशिप स्कूल
३०	१९६६	राजा गोपीचंद	” ”
३१	१९६६	ग्राम्य जीवन	सरला सर्जन हाईस्कूल
३२	१९६६	श्याम दुलारी	फेलोशिप स्कूल
३३	१९६७	अंडेरी गंडेरी टिपरी टेन	चिल्ड्रेन्स लिटिल थियेटर
३४	१९६७	बगदाद नो बेटो	सरला सर्जन हाईस्कूल
३५	१९६७	अररर फररर	मानव मंदिर हाईस्कूल
३६	१९६८	शकुन्तला	फेलोशिप स्कूल
३७	१९७०	चित्रलेखा	” ”
३८	१९७०	अडखियो राक्षस	बाल नाट्य संस्था
३९	१९७२	कवि जयदेव	फेलोशिप स्कूल
४०	१९७४	सत्यमेव जयते	” ”
४१	१९७४	मारो प्यारो भारत देश	दूरदर्शन केन्द्र (टी. वी.)
४२	१९७६	बाल रामायण	” ” (” ”)
४३	१९७६	मीनल देवी	फेलोशिप स्कूल
४४	१९७६	वसंत वेणु	दूरदर्शन केन्द्र (टी. वी.)
४५	१९७७	‘सोनेरी अवसर’	” ” (” ”)
४६	१९७८	पुरुरवा	फेलोशिप स्कूल
४७	१९८०	मालविका	” ”

श्री सुरेन्द्र सिंह की नृत्य-रचनाएँ और विविध सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ।

१ - १९४५ में "अखिल भारतीय नृत्य-महोत्सव" में भाग लिया था।

२ - "भगवान बुद्ध" नामक नृत्य-नाटिका में भाग लिया था।

३ - आई. एन. टी. आयोजित नृत्य-नाटिका "भक्त नरसैया" में भाग लिया था।

४ - १९४८ में अमेरिका जाने का निमंत्रण मिला था।

५ - बम्बई फिल्म्स डिविजन निर्मित चित्रपट "मणिपुरी नृत्य" में पार्श्व संगीत दिया था।

६ - 'स्टूडेन्ट्स प्रोग्रेसिव ग्रुप' द्वारा आयोजित "नृत्य-स्पर्धा में निर्णायक के रूप में नियुक्ति हुई थी।

७ - महाराष्ट्र सरकार के 'सिविल सप्लाय डिपार्टमेन्ट' द्वारा आयोजित नृत्य-कार्यक्रम में नृत्य रचना की थी।

८ - 'थ्री हेडेड कोब्रा' नामक चित्रपट में कलाकारों को नृत्य की शिक्षा दी थी।

९ - पोद्दार कॉलेज के भूतपूर्व विद्यार्थियों के लिए नृत्य-कार्यक्रम तैयार कराया था।

१० - भारत सरकार की ओर से १९५६ में यू. के. (यूनाइटेड किंग्डम) भेजे गये कलाकार वृंद में श्री सिंह मणिपुरी कलाकार के रूप में सम्मिलित हुए थे।

११ - डब्ल्यू. आई. ए. ए. क्लब द्वारा आयोजित कार्यक्रम में नृत्य रचना की थी।

१२ - सरला सर्जन हाई स्कूल द्वारा आयोजित नृत्य-कार्यक्रम में नृत्य रचना की थी।

१३ - फेलोशिप स्कूल के 'ललित कला भवन' की 'शिलारोपण - विधि' के अवसर पर नृत्य के विविध कार्यक्रम तैयार किये थे।

१४ - एम्बेसेडर हॉटेल द्वारा आयोजित कार्यक्रम 'धी हेवन बॉल' में फेलोशिप स्कूल की ओर से नृत्य - कार्यक्रम प्रस्तुत किया था।

१५ - "जूनियर रेड क्रॉस" द्वारा आयोजित 'नृत्य स्पर्धा' में फेलोशिप स्कूल की ओर से भाग लेकर 'प्रथम पारितोषिक' प्राप्त किया।

१६ - 'हेडमास्टर्स एसोसिएशन' द्वारा आयोजित नृत्य स्पर्धा में फेलोशिप स्कूल की ओर से नृत्य कार्यक्रम प्रस्तुत किया था।

१७ - "चिल्ड्रेन्स क्लब" के 'सुवर्ण महोत्सव' के शुभ अवसर पर आयोजित नृत्य-स्पर्धा में निर्णायक के रूप नियुक्ति की गई थी।

१८ - 'चिल्ड्रेन्स एकेडेमी स्कूल' की ओर से "हेडमास्टर्स एसोसिएशन" में नृत्य-कार्यक्रम प्रस्तुत किये थे।

१९ - पोलैंड में वार्सा में आयोजित पाँचवे "यूथ फेस्टिवल" में श्री सिंह के द्वारा तैयार की गई विद्यार्थिनी को 'प्रथम पुरस्कार' मिला था।

२० - जापान के सुप्रसिद्ध नृत्य-दिग्दर्शक 'श्री के. शाका की बारा' को भी नृत्य शिक्षा दी थी।

२१ - अहमदाबाद के विख्यात विद्यालय - 'श्रेयस' में नृत्य-शिक्षक के लिए निमंत्रण-पत्र-प्राप्त हुआ था।

२२ - बम्बई मे जापान के चान्सलर की धर्मपत्नी श्रीमती 'वाई. इशीवाका' को नृत्य की शिक्षा दी थी।

२३ - बम्बई के 'अमुलख अमीचन्द' नामक विद्यालय में विविध नृत्य के कार्यक्रम तैयार करवाये थे।

२४ - 'ग्रान्ड मेडिकल कॉलेज' के लिए विविध नृत्य कार्यक्रम तैयार करवाये थे।

२५ - बम्बई की सुविख्यात 'सेंन्ट जेवियर्स कॉलेज' में विविध नृत्य कार्यक्रम तैयार करवाये थे।

२६ - 'हेड मास्टर्स एसोसिएशन' द्वारा आयोजित कार्यक्रम में फेलोशिप स्कूल की ओर से नृत्य प्रस्तुत किया था।

२७ - अमेरिका के एक महाविद्यालय के प्राध्यापक गण, श्री विलियम्स, श्री एच. ग्रिफिन, एवं श्री जोन्स पॉल लियोनॉर्ड, जब फेलोशिप स्कूल का निरीक्षण करने के लिए आये थे, उस समय श्री सिंह ने अनेक नृत्य कार्यक्रम प्रस्तुत किये थे।

२८ - आई. एन. टी. द्वारा अयोजित 'रास गरबा' तथा 'लोक नृत्य' आदि की प्रतियोगिता में फेलोशिप स्कूल की ओर से 'विविध लोकनृत्य' प्रस्तुत किये थे।

२९ - महाराष्ट्र सरकार के आमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार करके, फेलोशिप स्कूल की ओर से चौपाटी के खुले रंगमंच पर नृत्य-कार्यक्रम प्रस्तुत किये थे।

३० - "नृत्य संचयिता" नामक संस्था के आचार्य के रूप में विविध नृत्य कार्यक्रम प्रस्तुत किये थे। इस अवसर पर प्रमुख के रूप में सिने कलाकार सुश्री हेमामालिनी और अतिथि विशेष के रूप में महाराष्ट्र के पर्यटक विभाग के प्रधान श्री मधुसूदन वेराले भी उपस्थित थे।

३१ - सेंट जेवियर्स स्कूल द्वारा आयोजित-'नृत्य-स्पर्धा' में फेलोशिप स्कूल की ओर से नृत्य प्रस्तुत किया था, जिसमें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

३२ - 'दर्शना देसाई मेमोरियल' द्वारा आयोजित नृत्य-स्पर्धा में निर्णायक के रूप में कार्य किया था ।

३३ - दिल्ली में आयोजित 'युथ फेस्टिवल' में 'भारतीय विद्या भवन की ओर से नृत्य प्रस्तुत किया था ।

३४ - श्रीमती शिरीन वजीफदार के नृत्य-वर्ग 'दर्पण' में अनेक नृत्य रचनाएँ कीं ।

३५ - सिडनहम कॉलेज में अनेक नृत्य कार्यक्रम तैयार करवाये थे।

३६ - कुमारी अमला. जो वर्तमान समय में फ्रांस देश में नृत्य के वर्ग चलाती हैं, वह भी श्री सिंह की विद्यार्थिनी थी ।

३७ - श्रीमती लीला राव दयाल, जो रशिया में नृत्य के वर्ग चला रही हैं, वह भी श्री सिंह की विद्यार्थिनी थीं ।

३८ - पोंडिचेरी आश्रम में अभिजात परिवार की महिलाओं और फ्रन्स की लड़कियों को नृत्य की शिक्षा दी थी ।

३९ - 'स्टूडेन्टस प्रोग्रेसिव ग्रुप द्वारा आयोजित नृत्य-स्पर्धा में फिर दूसरी बार निर्णायक के रूप में नियुक्ति हुई थी ।

४० - ई. सन १९४६ से १९५८ तक अहमदाबाद में 'प्रीतम नगर' की "रंगमण्डल" नामक संस्था में हर वर्ष तीन-तीन मास तक वहाँ पर नियमित जाकर, नृत्य की शिक्षा देते हुए, विविध कार्यक्रमों की नृत्य-रचनाएँ करवायी थीं ।

४१ - 'रंगमण्डल' नामक संस्थाने दिनांक ११ - ११ - १९५७ को नाटय स्पर्धा में - 'जीवन एज नाटक' नामक नाटक प्रस्तुत किया था, उसमें श्री सिंह ने नृत्य रचना की थी।

४२ - ई. सन १९५८ में फेलोशिप स्कूल की ओर से प्रस्तुत किये गये कार्यक्रमों में श्री सुरेन्द्र सिंह ने विविध नृत्य रचनायें

करवाई थीं।

श्री सुरेन्द्र सिंह ने जिन संस्थाओं में नृत्य के वर्ग चलाये एवं नृत्य की शिक्षा दी थी, उसका विवरण निम्नांकित है :

क्रम	संस्था का नाम	स्थान का नाम
१	रंग मण्डल	अहमदाबाद
२	श्री अरविन्द आश्रम	पोंडीचेरी
३	भगिनी समाज (मणिपुरी नर्तनालय)	ऑपेरा हाऊस, बम्बई
४	लावण्य कलालय	” ” ”
५	चिल्ड्रेन्स एकेडेमी स्कूल	गामदेवी, बम्बई
६	गुजराती हिन्दू स्त्री मण्डल	सी. पी टेंक, बम्बई
७	वल्लभ संगीत विद्यालय	सायन, बम्बई
८	फेलोशिप स्कूल	अगस्त क्रान्ति मैदान, बम्बई
९	'रचना'	मलबार हिल, बम्बई
१०	बाल नाट्य थिएटर	वी. जे. टी. आई. कॉलेज माटुंगा बम्बई
११	लायन्स क्लब (नॅशनल कॉलेज)	वान्द्रा, बम्बई
१२	अमुलख अमीचन्द स्कूल	माटुंगा, बम्बई
१३	सरलासर्जन हाईस्कूल	विलेपार्ले, बम्बई
१४	चंदारामजी हाईस्कूल	सी. पी. टेंक, बम्बई

श्री सुरेन्द्र सिंह लिखित नृत्य-नाटिकायें —

(१) श्रद्धा, (२) जागृति, (३) कलाकार, (४) परिवर्तन, (५) महान व्यक्ति कौन ?

नृत्य - पुस्तकों और लेखों में श्री सिंह के नाम का उल्लेख हैं
(पुस्तकें) :

१ - मणिपुरी नृत्य - लेखिका - श्रीमती लीला राव दयाल

२ - ऐन एनोटोमी ऑफ बॅलेट - लेखक - श्री फरनल हॉल (लंडन)

३ - रिदम इन दी हेवन - लेखक - श्री रामगोपाल (लंडन)

पत्रिकायें - लेख

४ - अंजली - मणिपुरी नर्तन विकास - लेखिका :— श्रीमती नयना जवेरी

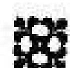
५ - मणिपुरी नृत्य - लेखिका श्रीमती नयना जवेरी

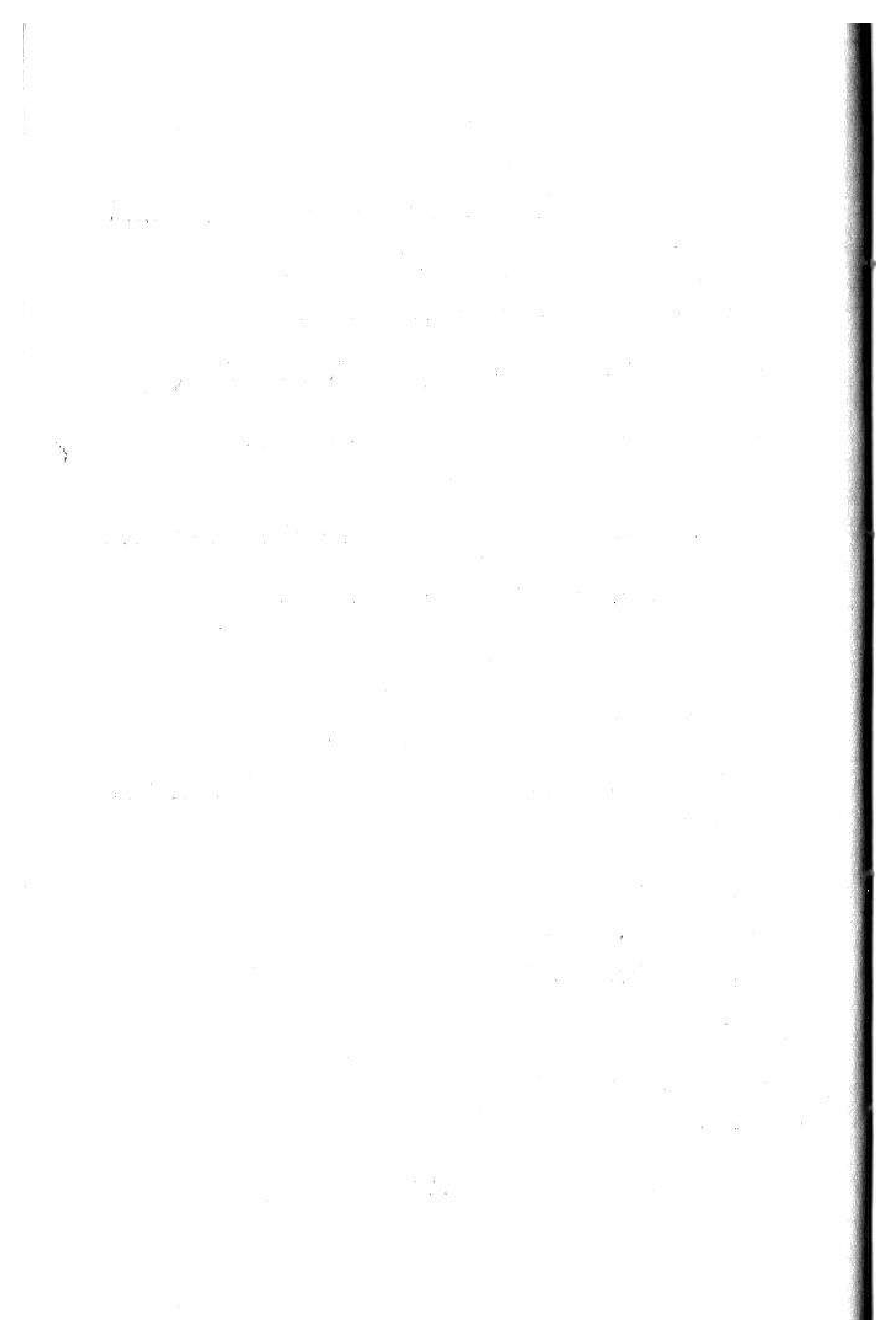
६ - ईल्ज वीकली - लेखक के. वी.

७ - सुधा (पत्रिका) - स्तम्भ लेखक

श्री सुरेन्द्र सिंह ने जिन गुरुओं से नृत्य - शिक्षा प्राप्त की उनके शुभ नाम —

[१] गुरु कृष्णधन
]२] गुरु पद्मलोचन सिंह
[३] गुरु दामोदर सिंह
[४] गुरु एइगा बाबाई
[५] गुरु अमोदन शर्मा
[६] गुरु विपिन सिंह





OPINIONS

अभिप्राय

पत्रिका — नवभारत टाईम्स, ३ मार्च १९५४

बम्बई की शिक्षण संस्था चिल्ड्रन्स एकेडमी की ओर से एक स्नेह सम्मेलन गत २७ फरवरी को सुन्दरबाई हॉल में आयोजित किया गया। इस पर शाला के विद्यार्थियों ने 'ऋतुओं ना रंग' [नृत्य-नाटिका] नामक आकर्षक कार्यक्रमों का प्रदर्शन प्रस्तुत किया। इसमें दर्शकों ने ऋतुओं का रंग शिर्षक नृत्य-नाटिका को विशेष रूप से पसन्द किया और वे मन्त्रमुग्धवत होकर इसे देखते रहे। इस नाटिका का निर्देशन नगर के प्रख्यात मणिपुरी नृत्य निर्देशक और शिक्षक श्री बिपिन सिन्हा के निकष्ठ भ्राता श्री सुरेन्द्र सिन्हा ने सम्पन्न किया। इस समस्त कार्यक्रम में छात्र-छात्राओं और अन्य कलाकारों ने अपना जैसा योग दान दिया वह अद्वितीय प्रतीत हुआ उनकी गणना उच्चकोटि के कलाकारों में हो सकती है।

पत्रिका — नवभारत टाईम्स, २४ अकतूबर १९६१

ग्वालिया टेंक-स्थित फैलोशिप स्कूल के ३५ वें वार्षिक उत्सव का उद्घाटन विद्यालय के ललित कला भवन में सम्पन्न हुआ। उद्घाटन उद्योगपति किलाचंद परिवार की वधु श्रीमती रमिला आर. किलाचंद ने किया। इस अवसर पर विद्यालय ने प्रस्तुत किया - एक नृत्य-नाट्य 'चित्रार्जुन' जिसकी नृत्य रचना एवम् निर्देशन विद्यालय के नृत्य शिक्षक श्री सुरेन्द्र सिन्हा ने किया। श्रीसिन्हा की नृत्य रचना, छोटे बालकों में बड़े सहज एवम् सरल रूप में रची हुई - सी होती है। सिन्हा जी की यही विशेषता है कि वह विद्यार्थी की अवस्था, आकृति व अन्तर्निहित शक्तियों के अनुसार उनके लिए नृत्यांकन करते हैं।

पत्रिका — नवभारत टाइम्स, १ मई १९६१

गत सप्ताह ग्वालिया टैंक स्थित फैलोशिप स्कूल के स्थापना-दिवस पर अनेक मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। श्री सुरेन्द्र सिन्हा के दिग्दर्शन में सुश्री दीपिका पारिख ने मणिपुरी शैली में 'राधा अभिसार' नामक नृत्य पेश किया। कृष्ण भक्ति-साहित्य की प्रमुख नायिका राधा के अभिसार की जिन चतुराइयों का चित्रण विद्यापति एवं बिहारी आदि कवियों की कविताओं में दिया गया है उन सभी को अपनी बेजोड़ कुशलता से सम्पूर्ण दर्शकोंको दिखाकर सुश्री पारिख ने इस नृत्य के महत्व को दुगुना बढ़ा दिया।

पत्रिका — नवभारत टाइम्स, १४ फरवरी १९६२

गत सप्ताह इण्डियन नेशनल थियेटर की ओर से आयोजित इस लोकनृत्य महोत्सव में लगभग ३० सांस्कृतिक संस्थाओं ने अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

फेलोशिप स्कूल की छात्राओंने मणिपुरी और नागा लोकनृत्य प्रस्तुत किये। दोनों नृत्यों में पोशाक की विविधता आँखोंमें बस जाने-वाली थी। टीम की सुन्दर और कलाकार बालिकाएँ एक दूसरे को उचित ढंग से संभाले हुई थीं। पंक्ति-निर्माण और गोल घूमने की क्रिया में रंगमंच पर मानों रंग ही बिखर जाता था। नृत्य का संचालन श्री सुरेन्द्र सिन्हा के कन्धों पर था।

पत्रिका — नवभारत टाइम्स, २३ अक्तूबर १९६३

फैलोशिप सोसायटी की ओर से स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में

रंगोत्सव मनाया गया। रंगोत्सव में प्रस्तुत मणिपुरी नृत्य एक अद्‌भूत समन्वय का दृश्य उपस्थित हुआ। इसके अलावा "देव नर्तकी" नामक नृत्य नाटिका आकर्षक रही। इस भावपूर्ण नाटिका में प्राकृतिक दृश्य काफी सजीव बना। राजन पुरूरवा का विरह-प्रदर्शन तथा उर्वशी की भावाभिव्यकित इस नाटिका की मुख्य आकर्षण थी। अभिशाप के कारण उर्वशी की लता बन जाने पर पुरूरवा को जंगल में भटकना और पक्षियों से उर्वशी के बारे में पूछने का दृश्य हृदय द्रावक बना रहा। इस नृत्य नाटिका का निर्देशन श्री सुरेन्द्र सिन्हा ने किया है। "राग रंग" के अन्तर्गत फैलोशिप स्कूल के छात्र छात्राओं ने विविध नृत्य पेश किया। जिसमें बनजारा नृत्य मच्छीमार नृत्य, गरबा रास मणिपुरी नृत्य आदि उल्लेखनीय रहे। छात्राओं के इन नृत्यों से ललित कला में दिलचस्पी और लगन का परिचय मिलता है। खास कर मणिपुरी नृत्य जिसमें छात्राओं की कुछ हद तक दक्षता का परिचय मिलता है। इस कार्यक्रम की रचना भी श्री सिंहा के दिग्दर्शन में संपन्न हुई।

पत्रिका – नवभारत टाईम्स २८ अक्तूबर १९७४

गत सप्ताह फैलोशिप स्कूल का ४७ वाँ स्थापना दिवस मनाया गया। इस अवसर पर आयोजित रसोत्सव का उद्‌घाटन मेयर श्री बोमन बेहराम ने किया। इस अवसर पर "सत्यमेव जयते" नामक नृत्य नाटिका प्रस्तुत की गयी। जिसमें ३५० बाल कलाकारों ने भाग लिया। श्री सुरेन्द्र सिंहा के दिग्दर्शन में प्रस्तुत इस नृत्य-नाटिका में कलाकारों का अभिनय प्रशंसनीय रहा। इस नाटिका में बाल कलाकारों ने उत्कृष्ट अभिनय और नृत्य कला का परिचय दिया।

અંજલી – વિકલી દિવાળી સ્પેશિયલ અંક :-

૧૮ મી ઑકટોબર ૧૯૫૨

શ્રીમતી નયના ઝવેરી લિખિત "મણિપુરી નર્તન વિકાસ" નામક લેખમાં નીચે પ્રમાણેનું ટાંચણ છે "ભારતીય મણિપુરી નર્તન વિષે એક તુલનાત્મક અને શાસ્ત્રીય ચર્ચા કરતો આ લેખ નૃત્યકલાના ચાહકોને સારી એવી માહિતી પૂરી પાડી રહે છે. મારા ગુરુ શ્રી. બિપીન સિંહા અનેક માર્ગો દ્વારા મણિપુરી નર્તનનો પ્રચાર કરવાની ઝંખના સેવી રહ્યા છે. મણિપુરી નર્તનનું પદ્ધતિસર શિક્ષણ આપવા માટે તેમણે ઈ. સ. ૧૯૫૦ માં તેમના ભાઇ શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહા સાથે "મણિપુરી નર્તનાલય" નામે સંસ્થા સ્થાપી. નર્તનના પ્રકારોનું શાસ્ત્ર અનુસાર વિવરણ કરી નર્તનની સાથે બૌધિક જ્ઞાનનું પણ તેઓ શિક્ષણ આપે છે. ઈ. સ. ૧૯૫૧ માં ઇન્ડિયન નૅશનલ થિયેટર ના આશ્રય હેઠળ શ્રી. સિંહાના નર્તન દિગ્દર્શન નીચે "ઉષા" નામે નૃત્યનાટિકા પૂર્ણ મણિપુરી શૈલીમાં થઇ હતી."

જન્મભૂમિ – તા. ૨-૩-૧૯૫૪

મુંબઈ – ચિલ્ડ્રન્સ એકેડેમી તરફથી તા. ૨૭-૨-૫૪ ની સાંજે સુંદર બાઈ હૉલમાં એક સ્નેહ સંમેલન યોજાયું હતું. સૌ કાર્યક્રમનો મેરું હતો "ઋતુઓના રંગ" એ લગભગ પોણા કલાકની નૃત્યનાટિકા હતી. એનું દિગ્દર્શન શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાએ કર્યું હતું.

શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહા મણિપુરી નર્તનના એક શ્રેષ્ઠ કલાકાર છે. આ નાટિકાની સફળતા પાછળ એમનો અવિરત પરિશ્રમ દેખાઇ આવતો હતો. કલાકારો વિદ્યાર્થીઓ હોવા છતાં ખૂબ તાલિમ પામેલા જણાતાં હતાં.

ગુજરાત સમાચાર – તા. ૧૭-૫-૧૯૪૯

અમદાવાદ :– તા ૧૪ મી ને શનિવારે સાંજે છ વાગે શારદા મંદિરમાં એલિસબ્રીજ આરોગ્ય સમિતિ સંચાલિત સંગીત નૃત્યકેતન તરફથી નૃત્યવર્ગનું ગુજરાતના કલાગુરુ શ્રી. રવિશંકર રાવળે ઉદ્‌ઘાટન કર્યું. શ્રી. રવિશંકર રાવળે આશીર્વચન ઉચ્ચાર્યાં હતાં અને કહ્યું હતું. કે આપણી પ્રાચીન કળાને પુનર્જીવન આપવા પ્રયત્ન કરીએ છીએ એ આનંદની હકીકત છે. નૃત્ય આપણી આંખને અપૂર્વ આનંદ આપે છે. એક કળાને ખીલવતાં અને એના સાચાં સ્વરૂપને પારખતા અને અપનાવતાં તમે શીખો એ જ મારે કહેવું છે.

ત્યાર પછી નૃત્ય વર્ગના શિક્ષક શ્રી. સિંહાએ નૃત્યના જુદા જુદા સ્વરૂપનો પરિચય આપ્યો હતો અને જણાવ્યું હતું કે નૃત્ય એ સહજમાં હસ્તગત થતી કલા નથી એને માટે તો હૈયાની પરમ ભાવના જોઇએ. સાધના અને ઉપાસના જોઇએ.

લોકતંત્ર – તા. ૨૭-૧-૧૯૬૦

ગુરુ શિષ્યના પવિત્ર સંબંધોને આલેખતી
"બૃહન્નલા" નાટિકાની કલામય રજુઆત —

આ સપ્તાહમાં રજુ થયેલ રંજન કાર્યક્રમો માં ફેલોશિપ શાળા દ્વારા પોતાની ૩૩ મી જયંતિ નિમિત્તે રજુ થયેલ "બૃહન્નલા" નૃત્ય નાટિકા ગુરુ શિષ્યા ના પવિત્ર સંબંધોને સુવર્ણાક્ષરે આલેખે છે ને કલા દૃષ્ટિએ મોખરે રહે છે નૃત્ય રચના અને દિગ્દર્શન શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાના કસબને ખરેખર ઓપ આપે છે.

જન્મભૂમિ — તા. ૫-૧૦-૧૯૬૦

સંગીત અને કાવ્યથી આહલાદક બનેલી નૃત્યનાટિકા :- ફેલોશિપ શાળાનાં વિદ્યાર્થીઓ અને વિદ્યાર્થીનીઓએ પોતાની શાળાની ૩૪ મી જયંતિ અને રસોત્સવ પ્રસંગે છેલ્લા અને ત્રીજા દિવસે "એક કમળનું ફૂલ હતું." નામની ભજવેલી નૃત્યનાટિકા એમની વસ્તુ, ભાવ વગેરે જોતાં એક ઉચ્ચતમ બાલ સાહિત્ય અને વિદ્યાર્થી - વિદ્યાર્થીનીઓ માટે એક શ્રેષ્ઠ નૃત્ય- નાટિકા ગણાય. એના લેખક છે શ્રી. વેણીભાઈ પૂરોહિત અને નૃત્ય દિગ્દર્શક શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહા છે.

ગાયનની અને નર્તનની તેમ સન્નિવેશ તથા વસ્ત્ર પરિધાન ઈત્યાદિ બાહ્ય ઉપસ્કરની દૃષ્ટિએ એમ સર્વાંગી એક સફળ અને આનંદ આપનારો પ્રયોગ હતો.

જનશકિત :— તા. ૨૫-૧૨-૧૯૬૦

—: ગીત - સંગીત અને નૃત્યની નયન મનોહર સૃષ્ટિ :—

જાણીતા કવિશ્રી વેણીભાઈ પૂરોહિતના ભાવપ્રેરક ગીતો

તેમજ શ્રી. કિરણુ સંપત અને જગન્નાથ ભટ્ટની જોડીના કર્ણ-પ્રિય સ્વરાંકનથી તરબોળ કરતી "એક કમલનું ફૂલ હતું" નામની નૃત્યનાટિકા બિરલા માતુશ્રી સભાગારમાં રવિવાર તા. ૮-૧-૬૧ ના રોજ સવારે ૯-૩૦ વાગે રજૂ થશે શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાએ ગીત અને સંગીતને ઝલક આપે એવા નર્તન પ્રકારોમાં આ નૃત્યનાટિકાને નયન મનોહર બનાવી છે.

જનશક્તિ :— તા. ૨૯-૧૦-૧૯૬૧

"ચિત્રાર્જુન" નૃત્યનાટિકા :—

કવિવર ટાગોરની નૃત્યનાટિકા ચિત્રાંગદાનું ગુજરાતી સ્વ-રૂપ એટલે ચિત્રાર્જુન. કવિવર ટાગોર ની નૃત્યનાટિકા "ચિત્રાં-ગંદા સ્થાનિક અને કલકત્તાની કલાકાર મંડળીઓએ મુંબઇમાં આ પૂર્વે ઘણીવાર રજુ કરેલી છે. પરંતુ એનું ગુજરાતી સ્વ-રૂપ યોગ્ય રીતે અને સન્નિષ્ટ પ્રયોગ તરીકે અત્યાર સુધીમાં રજુ થયું ન હતું. એ ખામી આ નૃત્યનાટિકા દ્વારા દૂર થાય છે.

ફેલોશિપ શાળાની ૩૫ મી જયંતિ પ્રસંગે ભારતીય વિદ્યાભવનમાં આ નૃત્યનાટિકા તા. ૨૦ મી એ રજુ થઇ હતી અને તેમાં મુખ્યત્વે શાળાની ઊગતી કલાકાર બાળાઓએ જે મુખ્ય અને ગૌણ તમામ ભૂમિકાઓ ભજવી હતી. નૃત્ય-નાટિકાને સાચા અર્થની નૃત્યનાટિકા બનાવવાનો યશ નૃત્ય દિગ્દર્શક શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહા ને ફાળે જાય છે.

સુકાની :— તા. ૧૩-૧૦-૬૨

"રૂપ રંગ-રંજન"

ગુજરાતી હિન્દુ સ્ત્રી મંડળે રજૂ કરેલી નૃત્યનાટિકા 'જંતર મંતર'

નવરાત્રી ઉત્સવ નિમિત્તે ગુજરાતી હિન્દુ સ્ત્રી મંડળે રજૂ કરેલી નૃત્યનાટિકા જંતર-મંતર લોકપ્રિય બની ગઈ હતી. આ નૃત્યનાટિકાનું નૃત્ય દિગ્દર્શન શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાએ નૃત્યમાં વિવિધતા આણી એમની કલાનો પરિચય આપ્યો હતો. નાના બાળકથી માંડીને યુવતી સુધીના અનેક કલાકારોને જુદા જુદા અભિનય એ ભાવ શીખવવાને એનું સમગ્ર ચિત્ર ઉપસાવવું અને ઘણું અઘરું છે. શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાએ એ કાર્ય ઘણી કુશળતાથી કર્યું છે. નૃત્ય દિગ્દર્શક તરીકે એમની સફળતા વરતાઈ આવે છે.

સુકાની :— તા. ૨૮-૯-૧૯૬૩

"રૂપ-રંગ-રંજન"

'બાલનાટ્યનું' બાલપ્રિય સર્જન "વિજય અને વડલો" મુંબઈની 'ધ ચિલ્ડ્રન્સ લિટલ થિયેટર, નામક સંસ્થાએ 'બાલનાટ્ય' નિર્મિત બાલનાટિકા 'વિજય અને વડલો' તેજપાલ હૉલમાં ભજવી હતી. અંગ્રેજી પરીકથા 'જેક એન્ડ ધ બીન સ્ટૉક' પર આધારિત આ નાટિકાનું રૂપાંતર તથા દિગ્દર્શન

શ્રી. તરલા મહેતા એ કર્યું હતું. નિર્માણ માં શ્રી. ઉષાબેન ભાલમલજી તેમની સાથે હતાં ખેડૂતો પક્ષીઓ અને વાદળાં ઓનાં સમૂહનૃત્યો માં નૃત્ય દિગ્દર્શક શ્રી સુરેન્દ્રસિંહાની વિશેષતાઓ સ્પષ્ટ દેખાતી હતી.

પ્રજાતંત્ર તા. ૨૦-૧૦-૧૯૬૪

ફેલોશિપ સોસાયટીની જયંતી ઊજવણી નિમિત્તે યોજાયેલો સાંસ્કૃતિક કાર્યક્રમ

ફેલોશિપ સોસાયટીની ૩૮ મી જયંતી નિમિત્તે તેજપાલ ઑડિટોરિયમ ખાતે તા. ૧૫-૧૦-૬૪ થી ૨૦-૧૦-૬૪ સુધી યોજાયેલા રસોત્સવમાં 'શિવલગ્ન' નાટિકાનું નૃત્ય દિગ્દર્શન શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાની તથા સંગીત શ્રી. ચત્રભુજ રાઠોડની જોડલી એ પોતાની ઉત્કૃષ્ટ કલા અને આગવી શૈલીથી નાટકોની દુનિયામાં એક નવી જ ભાત પાડી. ભુતડાનું નૃત્ય યોગેન્દ્ર દેસાઇ જેવા સિધ્ધ હસ્ત નૃત્યકારના અભિપ્રાય અનુસાર પ્રથમ કક્ષાનું હતું.

મુંબઇ સમાચાર — તા. ૧૨-૧-૧૯૬૨

આઈ. એન. ટી. ના ગરબા - રાસ મહોત્સવમાં શાળાઓનાં વિવિધ કાર્યક્રમો :—

મુંબઈ તા. ૧૧ મી જાન્યુઆરી રંગભવનમાં આઇ. એન.

ટી. ના આશ્રયે યોજાયેલી ગરબા - નૃત્યની રમઝટ દિલ અને દિમાગ ને તર કરી ગઇ છે. આ ત્રણે દિવસના આખાયે કાર્યક્રમમાં બૃહદ મુંબઇની શાળાઓ મોખરે રહી હતી અને એમાંયે ફેલોશિપ શાળા મેદાન મારી ગઈ છે. કુલ ચાર આઈટમો આ શાળાએ આપી હતી જેમાં આસામનું કાબોઇ નામની નાગજાતિનું લોકનૃત્ય અસ્મરણિય રહેશે જેનું નૃત્ય દિગ્દર્શન શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાએ કર્યું હતું. એટલે એનો યશ એમને ફાળે જાય છે.

જન્મભૂમી — તા. ૧૮ - ૮ - ૧૯૬૨

ગીત, સંગીત, કંઠમાધુર્ય અને નર્તન રમ્ય અભિનયની સુંદર ફલશ્રુતિ રૂપ " જંતર મંતર "

ગઈ તા. ૧૧ મી ઑગષ્ટે સાંજે બિરલા માતૃશ્રી સભાગૃહમાં ગુજરાતી હિંદુ સ્ત્રી મંડળ (મુંબઇ) ને આશ્રયે કન્યામંડળનો રજત મહોત્સવ ઉજવાઈ ગયો. પ્રમુખપદે શ્રી. જગપ્રકાશ મુકુંદલાલ અગ્રવાલ હતા. મહોત્સવનું સહુથી મહત્ત્વનું અને પ્રાણસમું અંગતે આ પ્રસંગે રજુ થયેલી ' જંતર મંતર ' નામની નૃત્યનાટિકા હતી આ નૃત્યનાટિકાની ગીત કથા જાણીતા કવિ શ્રી. વેણીભાઈ પૂરોહિતે લખ્યાં હતાં. એનું સંગીત શ્રી. કિરણ સંપટ અને શ્રી. જગન્નાથ ભટ્ટે સંભાળ્યું. હતું. નૃત્ય દિગ્દર્શન શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાએ સંભાળ્યું હતું. ઘડીમાં વિકટ અને ઘડીમાં સરળ ઘડીમાં આનંદની સુરખી પાથરતો તો ઘડીમાં શોકની છાયા વિસ્તારતો આ એવો જિન્દગીનો ખેલ દર્શાવતી "જંતર મંતર " નૃત્યનાટિકા હતી.

સમાજ દર્પણ :— જનશક્તિ — તા. ૨૬-૧૦-૧૯૬૪

મુંબઇની જાણીતી શિક્ષણ સંસ્થા ફેલોશિપ સ્કુલે શિક્ષણ કલાનાં ક્ષેત્રમાં પોતાની જ ગણી શકાય એવી એક પરંપરા ફેલોશિપ ટ્રેડીશન (ફેલોશિપ પરંપરા) સર્જી છે જે વિદ્યાર્થીઓને વિશિષ્ટ રીતે ઉચ્ચ શિક્ષણની સાથે બાળકોમાં રહેલી નૈસર્ગિક કલાને સાંકળી લઇને પ્રતિવર્ષ યોજાતા કલા સાંસ્કૃતિક સમારોહ પ્રસંગે તેને બહાર લાવવાની એની પરંપરા વડે ફલિત થાય છે. પ્રતિ વર્ષે આ સંસ્થાના યોજાતા મહોત્સવો વેળાએ બાળકોમાં રહેલા અને વિકાસ પામતા કુદરતી કલા આવિષ્કારો ને મેદાન આપવા જે અવનવા પ્રયોગો થઇ રહ્યાં છે તે સામાન્ય કલાના નથી હોતા. એ પ્રયોગો પાછળ કોઇને કોઇ નવીન દૃષ્ટિ અને દીર્ઘ તાલિમ લઇ રહેલાં હોય છે. અને એથી તો કલાપ્રેમીઓને એમ જ લાગે કે, આ કલા પ્રયોગો કોઇ જાણીતી કસાયેલી કલા સાંસ્કૃતિક સંસ્થાના પ્રયોગોને તોલે બેસી શકે એવા નીવડ્યા હોય છે.

આ વર્ષે ફેલોશિપ સ્કૂલની ૩૮ મી જયંતિ ઉજવવા યોજાઈ ગયેલા રસોત્સવમાં " શિવલગ્ન " નામક નૃત્યનાટિકાએ આગવું સ્થાન મેળવ્યું હતું " શિવલગ્ન " નૃત્યનાટિકા શ્રી. ધીરજ વોરા રચિત હતી જેને શ્રી. ચતુર્ભુજ રાઠોડના સંગીત દિગ્દર્શનનો સાથ સાંપડતાં આ નૃત્યનાટિકા કલાના એક સુંદર આવિષ્કાર સમાન બની રહી હતી. નૃત્યનાટિકામાં ભૂતડાંનું નૃત્ય એની પ્રકાશ આયોજનકલા અને નૃત્યની નવીન 'ટેકનીક' વડે ખાસ ધ્યાન ખેંચી ગયું હતું. ખુદ યોગેન્દ્ર દેસાઈએ પણ

આ નૃત્યને ઉચ્ચકક્ષાનું ગણ્યું હતું. મશાલ નૃત્યો, શિવસ્તુતિ તરાના, નાગનૃત્ય તારાનૃત્ય વગેરે લોકનૃત્યો અને સમુહનૃત્યો પણ ધ્યાન ખેંચનારા હતાં.

જન્મભૂમિ — તા. ૩૦ - ૧ - ૧૯૬૬

ફેલોશિપ શાળાની ૩૯ મી જયંતિ નિમિત્તે શાસ્ત્રિય સંગીત અને નૃત્યોનો આહલાદક રસોત્સવ મુંબઇ - તા. ૨૮

અત્રેની ફેલોશિપ સ્કૂલની ૩૯ મી જયંતે નિમિત્તે યોજાયેલા રસોત્સવમાં શાળાનાં બાળકોએ રજુ કરેલી નૃત્ય-નાટિકા 'રાજા ગોપીચંદ' ની પટકથાને શ્રી. ધીરજ વોરાએ મધુર બાનીમાં આલેખી છે શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહા એ કથાને શાસ્ત્રિય નૃત્યોમાં ગૂંથી છે તો પંડિત ચત્રભૂજ રાઠોડે હળવા સંગીત સાથે શાસ્ત્રિય સંગીતનો સમન્વય સાધી બહેલાવી છે. 'કાગડા' નૃત્ય, 'સિલોનીઝ' નૃત્ય 'પનિહારી' નૃત્ય, 'સાંથાલ' નૃત્ય વગેરે નૃત્યોમાં કથા રસ રેલાવતી વહી ગઇ.

જનશકિત — તા. ૩૧ - ૧ - ૧૯૬૬

– સમાજદર્પણ –

રંગ જમાવી ગયેલો 'ફેલોશિપ' નો કલામહોત્સવ
ફેલોશિપ સોસાયટી નો રસોત્સવ.

મુંબઈની જાણીતી શિક્ષણ સંસ્થા "ફેલોશિપ સ્કૂલ" ની ૩૯ મી જયંતિ પ્રસંગે ફેલોશિપ સોસાયટી તરફથી તા.

૨૨ થી ૨૭ મી જાન્યુઆરી સુધી રોજ રાત્રે તેજપાલ ઓડિટોરિયમમાં રજુ થયેલી નૃત્યનાટિકાઓ નાટકો, બાળનૃત્યનાટિકા વગેરે કાર્યક્રમ નિરખતાં ફરી કહેવું પડે છે કે “ફેલોશિપની પ્રતિવર્ષની કલા પરંપરા આ વર્ષે પણ ઉજ્જવલ રીતે ચાલુ રહી હતી.

ફેલોશિપ સ્કૂલનાં ઉગતાં બાળ અને તરૂણ કલાકારો તેમ જ ભૂતપૂર્વ વિદ્યાર્થીઓ ધંધાદારી કલાકારોને પણ મોંમા આંગળા નખાવી દે એવી કુશળ કલા અને તાલીમ દાખવી શકયાં હતાં એમ સહર્ષ કહેવું પડે છે ફેલોશિપ નો રસોત્સવ સાચાં અર્થમાં કલા ઉત્સવ બની રહયો. નૃત્યનાટિકા “ રાજાગોપીચંદ ” સર્વ કલાપ્રયોગોના શિરમોર સમી બની રહેશે રાજા ગોપીચંદની કથા પ્રસિદ્ધ છે તેના ગીત અને પટકથા – લેખક શ્રી ધીરજ વોરા હતા નૃત્ય દિગ્દર્શન શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાએ કર્યું હતું અને સંગીત દિગ્દર્શનમાં પ. ચત્રભૂજ રાઠોડ નો કળશ રાખ્યો હતો.

જનશકિત — તા. ૨૪-૧૦-૧૯૭૦

નૃત્યનાટિકા ‘ચિત્રલેખા’

નૃત્યનાટિકા ‘ચિત્રલેખા’ મૌર્યકાલીન પ્રેમ અને ત્યાગની કહાણી છે એમાં નૃત્યો, અભિનય, ગીત–સંગીત અને રંગભર્યાં વાતાવરણનો સમન્વય હતો. આ નૃત્યનાટિકાની મૂળ કથા હિન્દી ના પ્રસિદ્ધ નવલકથાકાર શ્રી. ભગવતી ચરણ વર્માની છે. તેના

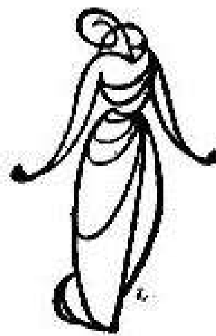
પરથી શ્રી. મનુભાઇ દવે એ એને ગુજરાતી સંગીત નાટિકાનું સ્વરૂપ આપ્યું છે. આ નૃત્યનાટિકાનું પટકથા સંકલન અને નૃત્ય દિગ્દર્શન શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાએ કર્યું છે.

મુંબઈ સમાચાર — તા. ૧૦-૧૧-૭૪

શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાના દિગ્દર્શન અને નૃત્યરચના યાદગાર રહ્યાં છે શ્રી. સુરેન્દ્ર સિંહાએ દિગ્દર્શનમાં કથાનું કાળજું રેડયું છે. એક પાત્રી નૃત્ય, સંઘનૃત્ય શાસ્ત્રિય નૃત્ય અને લોકનૃત્ય આમાં સમાયાં છે. તાલની ખૂબીઓ ને આ તરૂણો આટલા વિશ્વાસથી હાજર કરે એ બતાવી આપે છે કે એની પાછળ કેટલો પરિશ્રમ લેવાયો છે.

ફેલોશિપ સ્કુલનાં આ તરૂણોએ 'સત્યમેવ જયતે' દ્વારા કલાની ધૂમધામની ફેરવી અને સમગ્ર કલાઓની સુવાસ ફેલાવી.





"THE BHARAT JYOTI"

Sunday December 7, 1952

Bombay has been lucky in having Shri Bipin Sinha who was gained admirable success in presenting Manipuri dancing in its pure form and Spirit. He has grasped the very essence of the Hasya technique of Guru Anubi Sinha. He mastered the style first at the hands of Guru Padmalochan Sinha. He has sucessfully attempted to collect and assimilate the various form into a composite whole style so as to impart it in a systamatised scientific course. To this end in collaboration with his brother "Shri Surendra Sinha". He has established a school in Bombay Known as Manipuri Nartanalaya.

The Times of India

Sunday 15th July 1956

A party of dancers and musicians is shortly leaving Bombay to join Ram Gopal's troupe and to participate in the Edinburgh Festival. Participation in the Festival has been sponsored by the Govt. of India. the dancers in the party will be Shewanthi, Kumudini, Pheroza Cooper, Satyavati, Nambruddi. Surendra Sinha, Ramanlal Mishra and Satyavan. On their way to Edinburgh they will also give performances at Nervi (Italy) After the festival they will appear at the Royal Festival Hall, London.

"The Sunday Standard"
Sunday 15th July 1956

Ram Gopal's troupe of dancers and musicians is leaving India in two groups on Sunday and Monday to participate in Edinburgh Festival and at the Royal Festival Hall, London. The highlights of their programme at the Edinburgh Festival will be the ballet, "The Legend of the Taj Mahal". This is the first time an Indian troupe has been invited to perform at the Edinburgh Festival.

"TREND" Dance Exponents
Sept. 1958

Manipuri dancing by Nayana Jhaveri due to the growing interest in this Art all over India, many art institutions have established dance School in big cities by procuring enthusiastic co-operation of talented Gurus from Manipur. The well known among these Gurus who have taught outside Manipur are Guru Nabhakumar Sinha and his son Shri Narendra Sinha, Guru Amubi Sinha, Guru Havam Tomba, Guru Amoton Sharma, Guru Senarik Rajkumar, Shri Shardendu Sinha, Shri Kamini Kumar, Guru Bipin Sinha and his brother Shri Surendra and Shri Devendra Sinha, Shri Rathinadra Sinha, Gouhari Sinha, and Sinhajit Sinha.

The Times of India

Tuesday 25th August 1959

Saturday night saw the first presentation of "Roopkosha" a new ballet at the Birla Theatre. It was the maiden venture of Kala Bhavan Santa Cruz of which Yogendra Desai a gifted Choreographer, is the director. whereever his choreographer, has been inspired by our classical donces, it has tended to sufer from a repetitive monotony, especially in Roop Kosha's own dances. "Surendra Sinha's" adaptation of Manipuri dances leaves nothing to be desired in the way of harmony, fuidity and aesthetic appeal.

"The Free Press Bulletin"

Wednesday Jan. 27 1960

The fellowship School at Gowalia Tank established in 1927 completed 32 years last week. In celebration of the thirty second anniversary, the School authorities organised a three day programme at the Bharatiya Vidya Bhavan The climax of the three day programme was the dance ballet "Bruhanalla" which was staged on last Sunday. The theme of the ballet was the relation between the teacher and the taught, Kumari Sonal Pakwasa as Arjun, Kumari Suchi Dave as Urvashi and Kumari Nayana Hariyani as Uttara gave remarkable performances. Surendra Sinha deserves a bouquet for training a number of pupils for this enchanting ballet.

"The Free Prees Journal"

Monday, Sept. 29 1958

The three day Celebration of the thirty second Foundations Day of the Fellow Ship School concwded today at at the Bharatiya Vidya Bhavan. Smt. Kamalaben Parikh presided and Smt. Smt, Shardaben Parikh, wife of Shri Rasiklal Parikh. Bombay's Revenue Minister. was the Chief Guest. The most notable part of the art Festival at the Bharatiya Vidya Bhavan was the ballet entitled "Alakh Bavo" on Saturday. It was composed by Shri Avinash Vyas set to dance by Shri Yogendra Desai. It was a real achievement for the Fellow Ship School to put on the stage about 150 boys and girls in such an artistic foroducion.

"Free Press Bulletin"

Monday November 2nd 1964

The Fellow Ship School established in 1927, Completed 38 years recently to celebrate that event, the School organised a Variety programme for six days. The highlights of the six day Festival was a dance ballet "Shiv Lagna" written by Shri Dhiraj Vora and directed by Shri Surendra Sinha, more than 100 Children participated in this ballet, There were Garbas folk dances, torch dances, and classical Musick.

"The Bharat Jyoti"

Sunday October 5th 1958

Fighting against odds the Fellowship School at Gowalia Tank, Bombay, has just Completed thirty one years of service this year. Last week the School has organised a series of programme to celebrate the 32nd Foundation Day. Shri Hitendra Desai, The Education Minister, was the Chief Guest. The interesting programme was the dance ballet entitled "Alakh Bavo" which was directed by Shri Surendra Sinha. In which 150 students participated. The ballet was charming and instructive. One more show of this ballet will be held on Thursday at Bharatiya Vidya Bhavan. Lovers of Music and Dance should not miss this fine ballet.

"Free Press Bulletin"

March 14th Oct. 1963

In Celebration of its 37th annual Festival the Fellowship High School staged a variety of programmes on six days Under the presidentship of prominent personalities. On the 37th anniversary the School presented a dance-ballet "Dev Nartaki", written by Shri Kanti Ashok and directed by Shri Surendra Sinha. The ballet proved a great hit. Credit goes to Shri Surendra Sinha for training the youngsters so ably for this ballet, "Rag Rang" was a mixture of variely of items performed by more than 200 childern. The most interesting item was the Fishermen' Dance by the kids and the "Tipni" dance performed by the girls was charming & attractive. □

A LABOUR OF LOVE

It was Amazing. Five Hundred children of the Fellowship Society regaling packed audiences at Tejpal and maintaining an unbelievably high professional standard of showmanship and discipline as well.

The credit goes to the wizard organiser A. A. Inamdar (Dadaji) dance directors Surendra Sinha and Dipika Vaghwala, music director Chatrabhuj Rathod, that wonderful singer Shyamali and her fellow singers Hema Bhatt and Anjali. Besides, it goes to the background voices by the veteran Vanlata Mehta and Pravin Nayak, beautiful costumes by Kusumben and others, apt lighting by Kashyap Joshi, picturesque sets by Gautam Joshi and so many others who must have put in their body and soul in this labour of love. And they collected more than Rs. five lakhs performing every afternoon and night for nine days - in all eighteen shows.

Trick seenes

Tiny tots became sparrows, parrots, koils, peacocks, butterflies, bees and flowers wanting to fly deep into the sky and explore regions unknown, in the "Phul Ne Phorum" numbers. Then the small children presented Bhakta Narsaiyo written by Indukumar Parekh and directed by Dipika. With all the trick scenes, Shyamali's singing, the background voice of Vanlata Mehta, Narsaiyo (Viral Acharya) put his fellow nagars and the king who wanted a proof of his devotion, in their places with the ever-ready help of the God Almighty.

Contd. Next Page

Contd. From Previous Page

Dance director Surendra Sinha's 'Morali no Mahima' which burst in rainbow colours in a rarely seen grandeur, explained very ingenuously why Krishna is so fond of his flute. Krishna and Radha (Sonal Divecha and Tripti Mehta–Neepa Gandhi and Rajeshri in the afternoon shows) with their companions the gopis, panihаris, mahiaris and workers danced through the flowery lanes oi Vrindavan and through the stars. And the haunting tunes of Shyamli—the song "Morali man Hari Gai" will remain long in the memory—with tastefully selected costumes and choice choreography by the manipuri Guru Surendra Sinha. And how can one forget Laxmi (Purnima and Shefali) who sacrificed her life to purify herself and dwell eternally on the lips of Krishna as his flute.

The most astounding aspect of this mammoth programme was that not an entry was delayed, not a thing was out of alignment. The wonderfully drilled children performed with clockwork precision, Vacating the stage in less then minutes to go back for dinner after the afternoon show and return in due time was it self a feat !

-Ramesh Jamindar
Courtesy THE DAILY, Bombay

NIJKRUTI PRINTERS, BOMBAY-400 011. Tel. 391745 / 398487